प्रदूषणरोधी वृक्ष



किताबघर

प्रदूषण रोधी वृक्ष

विष्णुदत्त शर्मा

ISBN—81-7016-034-0

प्रकाशक
किताब घर
24/4866, शीलनारा हाउस, अंसारी रोड
दरियागंज नयी दिल्ली 110002

प्रथम संस्करण
1989

मूल्य
पचास रुपये

मुद्रक
कौशिक प्रिंटिंग प्रेस
नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032

PRADOOSHAN RODHI VRIKSH (Hindi)
by Vishnu Datt Sharma
Price Rs 50.00

आमुख

अनादि काल से ही प्राणीजगत और वानस्पतिक जगत म अटूट सम्बन्ध रहा है। इनका अटूट एव स्वस्थ सम्बन्ध ही स्वच्छ पर्यावरण की स्थापना करता है। वनस्पति जीवनीय वस्तु प्रोटीन, वसा एव शकरा जसी प्रधान वस्तुओ तथा लवण एव जल का सगठित स्वरूप है, जिनके ऊपर सम्पूण प्राणी जगत अपना भरण-पोषण करता है। इन तत्वो के भिन्न भिन्न मात्रा मे सगठित होने से वृक्षो मे छ प्रकार (मीठा, अम्ल, नमकीन, कडवा, चरपरा और कपला) के रस निर्मित होते हैं।

वैज्ञानिक विश्लेषण से यह ज्ञात भी हो चुका है कि वनो से भिन्न भिन्न रसो की प्राप्ति होती है और अपने इन गुणो के कारण ही ये वानस्पतिक रस रोगो को शात करने वाले हैं। कुछ वृक्ष ऐसे भी हैं जिनसे मिश्रित रसो के स्वाद का आभास होता है। इस प्रकार मीठा, अम्ल और नमकीन रसो के मिश्रण मे वातशामक, चरपरा, मीठा एव कषाय रसो के मिश्रण मे पित्तशामक तथा चरपरे, कडवे और कपले रसो के मिश्रण मे कफनाशक के गुण पाए जाते हैं। निष्कपत यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त सभी छ रसो मे त्रिदोषनाशक गुण विद्यमान हैं।

वृक्ष न केवल इमारती सामान, इधन, भू क्षरण को रोकने, छाया प्रदान करने, मरुस्थल को उवरा भूमि म बदलने, अधिक वर्षा मे सहायक होते तथा औषधि रूप म उपयोगी हैं बल्कि पर्यावरणीय प्रदूषण को रोकने और कम करने मे भी लाभदायक सिद्ध हुए हैं। वायु, जल, स्थल, रासायनिक प्रदूषण आदि के कारण उत्पन्न अनेक रोग वात पित्त-कफ, ज्वर, शोष, हैजा, पीलिया, सिरदद, दमा, कुष्ठ, राजयक्ष्मा, क्षय, अतिसार, उल्टिया आदि इन वृक्षो के फल फूल, छाल, पत्तिया, मूल (जड) इत्यादि के विविध उपयोगो से समूल नष्ट हो जाते हैं।

हिन्दी विज्ञान जगत के जाने माने लेखक श्री विष्णुदत्त शर्मा द्वारा रचि

'प्रदूषण रोधी वृक्ष' एक सराहनीय प्रयास है। प्रस्तुत पुस्तक मे लगभग बानवे वृक्षो के विवरण और गुणो का वणन है जो सम्पूण मानवजाति के लिए लाभप्रद सिद्ध होगी। मुझे उम्मीद है कि प्रस्तुत रचना कृषि विभागों, उद्यान विभागों, कृषि कॉलिजो, कृषको और वृक्ष-प्रेमियो के लिए अत्यत उपादेय सिद्ध होगी। पुस्तक की लोकप्रियता के लिए मेरी शुभकामनाए।

देवकीनन्दन शर्मा
निदेशक, उद्यान विभाग
नई दिल्ली म्यूनिसिपल कमेटी

लेखकीय

यह तथ्य है कि प्रत्येक मानव अपने अतीत को याद करता है और सोचता है कि वर्तमान से अच्छा तो भूतकाल ही था। मनुष्य जाति का यह चिन्तन भी किसी सीमा तक उचित ही है। पाषाण-युग मे मनुष्य को न खाने की चिन्ता थी, न रहने की, न कपडा की चिन्ता और न परिवार नियोजन की। प्राचीन काल मे मनुष्य प्रकृति के अधिक निकट था। प्रकृति से अपार प्रेम होने के कारण हमारे पूवज भी स्वच्छ जल एव वायु से युक्त सुन्दर उपत्यकाओ और उपवनो मे निवास करते थे। उस समय का जन-जीवन अत्यत साधारण एव सरल था। सभी लोग अपने आवश्यक कार्यों को स्वय करते थे और व प्राय आत्मनिभर थे। जनसख्या की वद्धि के साथ-साथ हमारी आवश्यक्ताए बढ़ती गयी। निवास की समस्या दूर करने के लिए सघन जगलो और उपवनो को काट दिया गया। धीरे धीरे ग्राम तथा नगरो का निर्माण एव विकास किया गया। बुद्धि का विकास हुआ और मानव ने समूहा म रहकर समाज की स्थापना की।

ग्रामा मे कपास की उपज होती जिसके द्वारा ग्रामीण हथकरघो से कपडा बुनकर पहनते, ईख से गुड बनाते और अपनी आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु स्वय तैयार करते। एक-दूसरे स आपस मे सबध स्थापित करने के लिए ऊटो, घाडो तथा बलगाडियो का प्रयोग करते थे। सरसो के तेल के दीपक ही हमारे घरो को प्रकाशमान करते थे। शनै शनै युग परिवतन होता गया। वतमान युग विनान एव प्राविधिक विज्ञान का युग माना जाता है। इसमे सन्देह नही कि विनान और प्राविधिक विज्ञान ने बहुत उन्नति की है जिसके कारण प्रत्येक क्षेत्र म पर्याप्त विकास दष्टिगोचर होता है और मानव जीवन के लिए रहन-सहन, यातायात आदि की अनेक ऐसी सुविधाए उत्पन्न हो गई हैं जिससे मानव जीवन बहुत सुखी और सुविधापूण हो गया है। विज्ञान और औद्योगिक प्रगति ने तो जन-जीवन को बिल्कुल ही परिवर्तित कर दिया जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य का जीवन यन्त्रवत हो गया है।

वायुयान, रेलगाडी, कार, मोटर साइकिल आदि विभिन्न यातायात सम्बन्धी उपकरणो स मनुष्य के लिए एक से दूसरे स्थान पर जाना बहुत सुलभ हो

है। यहा तक कि मनुष्य अतरिक्ष मे भी पहुच चुका है। इसी प्रकार कपडे, खाद्य सामग्री, विद्युत एव अनेक उद्योग धधो के लिए बड बडे कारखाना म कम परिश्रम मे अधिक मात्रा मे उपयुक्त वस्तुए तयार होन लगी हैं और मनुष्य का जीवन स्तर बहुत उन्नत हो गया है। फिर भी जन-जीवन निरन्तर अशात एव असतुष्ट होता जा रहा है। और अनेक प्रकार की नयी व्याधिया उत्पन्न हो रही हैं। इसका कारण कारखानो, मोटरो, रेलगाडियो, वायुयानो आदि से वातावरण का दुष्प्रभावित होना है। जिस देश म जितना अधिक औद्योगिक विकास हुआ है वहा पर वातावरण के प्रदूषण (Environmental Pollution) की उतनी ही समस्या उत्पन्न हो गई है। रूस, अमेरिका, यूरोप के अनेक देशा मे इस समस्या पर विचार करने और प्रदूषण को रोकने के सम्बध मे अनेक उपाय किए जा रहे हैं। मास्को नगर के चारो ओर इसीलिए हरित क्षेत्र बनाया जा रहा है। देहली के चारो ओर हरित पट्टी (green belt) तयार की जा रही है। भारत की भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधी की बीस-सूत्री योजना के अन्तगत देश-भर मे वक्षारोपण किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश के पवतीय क्षेत्रो मे 'चिपको आन्दोलन की सफलता भी प्रदूषण की रोकथाम मे एक अच्छा कदम है।

वक्ष, पृथ्वी, सूय तथा वायु से अपना जीवन निर्वाह करते है। पथ्वी से वे जितना पदाथ ग्रहण करते हैं उससे कही अधिक वे वायु से पोष्य पदाथ (nutrient) प्राप्त करते हैं। वायु के सयोजक पदार्थों मे से एक प्रकार की गस (कावन-डाइआक्साइड) अधिक परिमाण मे इन वक्षा द्वारा सगहीत होती है। अत इनमे सवप्रधान शक्ति वायुजनित होती है। इसके अतिरिक्त वक्ष सूय से भी बहुत कुछ सग्रह करते हैं। वृक्ष वायु के सघटक कावन डाइआक्साइड से अपने मुख्य भोजन कावन को ग्रहण करते हैं। सूय की किरणो द्वारा क्रिया के कारण वक्षा की हरी पत्तिया उत्पन्न होती हैं और फलस्वरूप इनमे कावन का ग्रहण तथा आक्सीजन का निकलना आरम्भ होने लगता है जिसको इनका (वक्षा का) श्वास प्रश्वास (respiration) काय कहत हैं। जब तक हरे पत्ता को सूय का प्रकाश प्राप्त होता है तब तक यह काय होता रहता है। सूय-प्रकाश हरे पत्तो तथा उनके कोष्ठो (cells) मे पहुचकर वृक्षो मे अनेक जीवनीय पदाथ पदा करत हैं। क्षार (alkali), विष (poison) तथा समस्त पोष्य पदाथ (प्रोटीन), वसा, शकरा एव लवण की उत्पत्ति होकर वृक्षो का जीवन हमेशा सरक्षित रहता है। इन तथ्या से स्पष्ट है कि पथ्वी से जल एव लवण, सूय से प्रकाश तथा वायु से कावन की प्राप्ति वनस्पति शरीर मे भिन्न भिन्न प्रकार की शक्ति प्रदान कर वनस्पति जीवन को सधारण करती है। इन वनस्पतियो की यही शक्तिया प्रदूषणजन्य रोगो मे औषधि का काय करती हैं।

वक्ष न केवल इमारती सामान, इधन भू क्षरण (soil erosion) को रोकने,

छाया प्रदान करने, मरुस्थल को उवरा भूमि में बदलने, अधिक वर्षा होने तथा औषधि रूप मे उपयोगी है। वनि पर्यावरणीय प्रदूषण को रोकने और कम करने से भी लाभदायक सिद्ध हुए हैं। वायु जल, स्थल, रासायनिक प्रदूषण आदि के कारण उत्पन्न अनेक रोग जैसे वात पित्त-कफ ज्वर, शोथ (dropsy), विषूचिका (cholera), पाण्डुता (pallor), सिरदर्द, श्वास (asthma), कुष्ठ (leprosy), खुजली, राजयक्ष्मा (T B), क्षय, अतिसार(diarrhoea) उल्टियां (vomiting) आदि इन वृक्षों के फल, फूल, छाल, पत्तियां इत्यादि के विविध उपयोगों से समूल नष्ट हो जाते हैं। वनस्पति जीवनीय वस्तु प्रोटीन, वसा एवं शर्करा जैसी वस्तुओं तथा लवण एवं जल का सगठित स्वरूप है, जिनके ऊपर सम्पूर्ण प्राणी-जगत अपना भरण-पोषण करता है। इन तत्वों के भिन्न भिन्न मात्रा में सगठित होने से वृक्षों में छ प्रकार के रस निर्मित होते हैं जो इस प्रकार हैं—1 मधुर (dulacious), 2 अम्ल (acid), 3 लवण (salt), 4 कटु (bitter), 5 तिक्त (acrid) तथा 6 कषाय (astringent) आदि।

रसों के विश्लेषण और प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि तिक्त रसों के विशेष पदार्थ तिक्तीन (acridine) में रोगनाशकता का गुण होता है। यही कारण था कि प्राचीन समय में चेचक (smallpox), हैजा, प्लेग, राजयक्ष्मा आदि अनेक सामयिक बीमारियां 'भैषज्य यज्ञ' द्वारा सामूहिक तौर पर निवारण की जाती थी। इन यज्ञों[1] में प्रयोग की जाने वाली लकड़ियां पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम तथा बिल्व (बेल) आदि हैं। सुगन्धित पदार्थ के रूप में कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, चन्दन, इलायची, जायफल और जावित्री इत्यादि हैं। यज्ञ में प्रयोग किए जाने वाले पौष्टिक पदार्थ घृत, दूध, फल, कन्द, चावल, गेहूं तथा उड़द (माष) आदि हैं। शकरा, मधु, छुहारे तथा किशमिश आदि मिष्ट और सोमलता (गिलोय) आदि औषधियां रोगनाशक होती हैं। वैदिक आर्यों का यह सनातन विश्वास है कि यज्ञों से आरोग्यता, वर्षा का नियन्त्रण, सतति, राज्य, विद्या, सेना और परमात्मा की प्राप्ति होती है। स्थान-स्थान पर यज्ञ (हवन) किए जाते हैं। सन् 1962 ई० में देशी विदेशी भविष्यवक्ताओं ने सम्पूर्ण ससार के प्रलय के कगार पर खड़े होने की भविष्यवाणी की थी। इस असत्य प्रचार का सहारा लेकर लाखों मन 'घी' तथा 'सामग्री' का स्वाहा किया गया। भारतवासियों को अपनी प्राचीन पद्धति 'यज्ञ' की याद आयी। इस प्रचार के कारण ससार में प्रलय नहीं हुई बल्कि यज्ञों के कारण उत्पन्न धुएं से वायु प्रदूषण दूर करने में अवश्य ही सहायता मिली।

योरोपीय विज्ञान की नकल करने वाले कुछ भारतीय विद्वान कहते हैं कि हवन से कार्बन उत्पन्न होती है, जो मनुष्य के लिए हानिकारक है। किन्तु यज्ञ से

1 विनन्त शर्मा कृत पर्यावरणीय प्रदूषण पुस्तक से उद्धृत।

निकले धुए का विश्लेषण करने पर फ्रास के विज्ञानवेत्ता अध्यापक ट्रिलवट कहते हैं कि जलती हुई शक्कर मे वायु शुद्ध करने का बडी शक्ति है। इसके धुए मे राजयक्ष्मा, चेचक, हैजा, आदि बीमारियो के कीटाणु नष्ट करने की क्षमता है। डा० एम० ट्रेल्ट ने बतलाया है कि मुनक्का, किशमिश आदि फलो के धुए मे टाइफाइड के रोगकीट मारने की शक्ति है। मद्रास के सेनेटरी कमिश्नर डा० कर्नल किंग आई० एम० एम० ने बतलाया कि घी और चावल मे केशर मिलाकर जलाने मे रोग जतुओ का नाश हो जाता है। फ्रास के डा० हैफकिन के अनुसार घी जलाने से रोगकीट मर जाते हैं। इस प्रकार हवन मे रोगनाशक पदार्थों के धुए से लाभ ही होता है। हवन मे प्रयोग किए जाने वाले सभी प्रदूषणरोधी वक्षो का विवरण आप प्रस्तुत पुस्तक मे पाएगे।

समस्त ससार ने यज्ञो को स्वीकारा है और ससार के सभी सम्प्रदायो मे ये अब तक प्रचलित है प्राचीन समय मे न केवल भारत मे बल्कि ग्रीक तथा रोम मे भी यज्ञ प्रचलित थे। जैनियो मे धूप दीप 'यज्ञ का ही अवशिष्ट और सूक्ष्म रूप है। यहूदियो के यहा यज्ञ होते थे और वे कुण्ड को 'केर' कहते थे। ईसाई और मुसलमानो मे भी अगरबत्ती और लोबान आदि जलाने की प्रथा आज भी मौजूद है। चीन वाले यज्ञ (हवन या होम) को होम कहते हैं। मिश्र की प्राचीन जातियो मे तथा अमेरिका के रेड इडियनो मे भी यज्ञ की प्रथा जारी थी। यज्ञ मनुष्य का आदिम धर्म है क्योकि अग्नि उत्पन्न करना ही मनुष्य का आदिम आविष्कार है।

वक्षो के गुणो अवगुणो तथा मानव शरीर पर इनमे विद्यमान रसो के प्रभाव का अध्ययन किया गया। भारतीय सस्कृति मे इस सभी अध्ययन को आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली के अतर्गत सजोया गया और इसके अनुरूप निदान एव उपचार आरभ हुआ। वक्षो मे मौजूद मधुर रस बलदायक तथा ततु (tissue) पोषक होता है और यह रस वर्ण (complexion) केश कठ इन्द्रिय तथा ओज का पोषक है। बालक, वद्ध, क्षीण एव क्षत (lesion) मे यह सफलतापूर्वक प्रयुक्त होता है। मधुर रस देर मे पचने वाला, दुग्धवर्धक, आयवर्धक, जीवनदायक, चिकना वातसस्थान (nervous system) और पित्त के कारण उत्पन्न रोगो का नाशक है। यदि अधिक मात्रा मे इसका सेवन किया जाए तो मेद (fatty marrow), कफ के रोग(catarrh), स्थूलता (stoutness), अग्निमाद्य (dyspepsia) प्रमेह गलगण्ड (scrofulous) अर्बुद (tumour) इत्यादि रोगो का पैदा करता है। इसके पदार्थ मधुर स्वाद वाले कार्बोहाइड्रेटस से मिलते जुलते हैं।

उचित मात्रा मे प्रयोग करने पर अम्ल रस अग्निवर्धक, स्निग्ध (demulcent), हृदय को हितकारी, पाचन और रुचिवर्धक है। गुणो (प्रभाव) में गर्म, छूने मे ठण्डा, प्राणवायु का पोषक तथा अलरेचक होता है। अधिक सेवन करने पर यह कफ तथा पित्त के रोग, वात पित्त ,आम-वात (rheumatism),

शरीर की शिथिलता, तिमिर (आखो के आगे अधेरा), भ्रम (delirium), खुजली, पाण्डुता (pallor), शोथ (dropsy), विसप (eruption), तथा और ज्वर को उत्पन्न करती है। इसी प्रकार लवण रस जोडो का दद और सूजन को आराम देने वाला, भूख बढाने वाला (अग्निवधक), स्नेहन (lubrication), पसीना लाने वाला, तीक्ष्ण (acrid) तथा कफ (phlegm) इत्यादि का छिन्न-भिन्न करने वाला है। इसके अधिक सेवन करने पर यह वातरक्त, मास कम करने वाला, प्यास, कुष्ठ (leprosy), विसप पैदा करना तथा शक्ति मे ह्रास (decay) करने वाला है। इसमे क्षार (alkali) के भी गुण मिश्रित है।

तिक्त रस के सेवन करने से अरुचि कृमि, प्यास, विष, कुष्ठ, मूर्च्छा, ज्वर, मितली (nausea), दाह (sore) एव पित्त (bile) उत्पन्न होते हैं तथा कफ-नाशक है। वसा (fat), मज्जा (marrow), मल और मूत्र का शोषण करने वाला है। यह रस हल्का तथा बुद्धि को हितकर गुणो (प्रभाव) मे ठण्डा, रूक्ष, दुग्ध-शोधक है, इसके अधिक प्रयोग करने से बल वीय का नाश होता है, मूर्च्छा, कमर-पीठ इत्यादि मे दद करने वाला तथा वातवधक है। कषाय रस इन्द्रियो (senses) को पीडा देने वाला, घाव भरने वाला (healer), पित्त-कफ का दूर करने वाला, भारी (late-digestive), रक्तशोधक (blood purifier), शीतल, मज्जा का शोषक, स्तम्भक (astringent) तथा त्वचा के वण को निखारने वाला है। अधिक सेवन करने पर यह वायु (गैस), हृदय के रोग, तपा, क्षीणता (कृशता), बलहानि, तथा नपुसकता (impotancy) बढाने वाला है।

वैज्ञानिक विश्लेषण से ज्ञात होता है कि वृक्षो से भिन्न भिन्न रसो की प्राप्ति होती है। अतएव अपने इन गुणो के कारण ही ये वानस्पतिक रस रोग-शामक होते है। कुछ वृक्ष ऐसे भी है जिनसे मिश्रित रसो के स्वाद का आभास होता है। इस प्रकार मधुर, अम्ल एव लवण रसो के मिश्रण मे वातशामक, तिक्त, मधुर एव कषाय रसो के मिश्रण मे पित्तशामक तथा तिक्त, कटु एव कषाय रसो के मिश्रण मे कफनाशक के गुण विद्यमान होते हैं। इससे हम निष्कर्ष पर पहुचा जा सकता है कि सभी उपरोक्त छ रसो म त्रिदोष-नाशक के गुण पाए जाते है। यो तो वृक्षो के वर्गीकरण करने के अनेक तरीके हैं किन्तु सदभ की दृष्टि से यहा हम इन्हे दो वर्गों मे विभाजित करते है— 1 रसप्रधान (यथा—छ रस) और 2 गुण प्रधान (यथा—बल्य, मूत्रल, रक्त-शोधक, विरेचक आदि)। इन सब प्रकार के वर्गीकरण का उद्देश्य रोगजन्य दोषो को समान करना है। अर्थात बढे हुए दोषो को कम करना, घटे हुए दोषो को बढाना तथा सम दोषो को स्थिर रखना है। इस प्रकार षटरसमय वनस्पतिया दोषघ्न, दोषवधक तथा दोषसाम्यकर होती हैं। अत यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि रसो तथा दोषो का बहुत निकट सम्बध है।

वायुप्रदूषण को दूर करने वाला तो लगभग सम्पूर्ण वनस्पति-जगत है, क्योंकि वनस्पतियां अपने अन्तश्वसन (inspiration) में कार्बन-डाइआक्साइड ग्रहण कर निश्वसन (expiratian) में आक्सीजन छोड़ती हैं। किन्तु प्रदूषण के कारण उत्पन्न रोगों में लाभकारी कुछ वृक्ष ऐसे भी होते हैं जिनको 'प्रदूषणरोधी वृक्ष' कहा जा सकता है। मोटरगाड़ियों से निकला धुआं जब वायुमण्डल में मौजूद जलकणों से मिलकर अम्लीय वर्षा (acid rain) करता है तो परिणाम-स्वरूप जल प्रदूषित हो जाता है। इसके अतिरिक्त जलप्रदूषण अनेक फैक्टरियों से वाहित रसायन मिश्रित जल के कारण भी अत्यधिक होता है। उदाहरणार्थ प्रदूषित जल को स्वच्छ करने के लिए निर्मली वृक्ष (देखें पृष्ठ 69) बहुत उपयोगी है।

उपर्युक्त समस्याओं, सामयिक बीमारियों के उपचारार्थ तथा प्रदूषण के कारण उत्पन्न भयावह स्थिति को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक 'प्रदूषण-रोधी वृक्ष' का संकलन किया गया है। भारत गणराज्य के भूतपूर्व राष्ट्रपति महामहिम ज्ञानी जैलसिंह जी की सेवा में 28 जून, 1983 ई० को जब मैंने अपनी कृति 'पर्यावरणीय प्रदूषण' सम्मानार्थ भेंट की तब उस अवसर पर माननीय राष्ट्रपति जी ने विचार व्यक्त किए कि 'जन कल्याण हेतु प्रदूषण दूर करने वाले वृक्षों के विषय में भी एक पुस्तक तैयार होनी चाहिए। इस प्रकार की पुस्तक न केवल किसी क्षेत्र विशेष के लिए उपयोगी हो, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र की एक निधि हो।' श्रद्धेय राष्ट्रपति जी का आदेश स्वीकारा और उनके आशीर्वाद ने पुस्तक रचना की प्रेरणा दी। उनकी शुभकामनाओं से प्राप्त प्रेरणा के प्रति मैं आभार प्रदर्शित करता हूं। महत्त्वपूर्ण सुझाव के लिए आर्थिक एवं विकास अनुसंधान केन्द्र गाजियाबाद के निदेशक डॉ० रवीन्द्र दत्त शर्मा को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूं। डा० शिवतोष दास, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, के समय-समय पर दिए गए सुझावों के प्रति मेरी आभारोक्ति है। जिन ग्रन्थों की छाया में यह कार्य सम्पन्न हुआ है उनके लेखकों, सम्पादकों एवं प्रकाशकों के प्रति आभार प्रदर्शन करना मैं अपना प्रमुख कर्तव्य समझता हूं। प्रस्तुत पुस्तक में मौलिकता का दावा नहीं किया जा सकता बल्कि माननीया प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी जी के बीस-सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत वृक्षारोपण को जन हितार्थ उत्साहित करने तथा 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के नारे को सार्थक अंगीकार करने के लिए ही यह पुस्तक लिखी गयी है। आशा ही नहीं अपितु विश्वास है कि देश में पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक जनसाधारण, पशु-पक्षी एवं जीव जन्तु सभी प्रदूषणरोधी वृक्षों से लाभान्वित होंगे।

पर्यावरण दिवस
5 जून 1989

विष्णुदत्त शर्मा
उपाध्यक्ष आर्थिक एवं विकास
अनुसंधान केन्द्र गाजियाबाद

क्रम

संकेताक्षर

उ०	उड़िया
बं०	बंगाली
म०	मराठी
गु०	गुजराती
क०	कन्नड़
ते०	तेलगू
ता०	तामिल
अ०	अरबी
इ०	इंगलिश
फा०	फारसी
सिं०	सिंहली

अगर

(Aquilaria Agallocha)

भाषायी नामभेद — क०—अगर ता०—अगर और काली अगर, ब०—अगरु, म०—कृष्णागर, गु०—अगरु, ते०—हरुगुहचेटटू, अ०—उदगरकी, इ०—Eagle Wood

संस्कृत नाम — अगुरु, प्रवर, लौह, योगज, वशिक, कृमिज, कृमि जग्ध, अनायक और राजाह ।

विवरण अगर के पेड आसाम मे अधिक पैदा होते हैं । इसके वृक्ष अत्यन्त बडे-बडे होते हैं । अगर के अन्वेषक जगलो मे इस पेड को पहचान कर काट लाते हैं और असार भाग को वही छोड आते है । शेष सार भाग जो सुगंधित रहता है, ले लेते हैं । कही-कही इसे काटकर भूमि म दबा देते हैं, जब असार भाग सड जाता है और सार भाग रह जाता है तब इसे ग्रहण कर लेते है । इसमे सवत्र निर्यासवत पदार्थ नही होता बल्कि जिन जिन स्थानो पर चोट लगी रहती है या कोटर (cavity) बने रहते हैं उन्ही जगहो पर निर्यासवत पदार्थ अधिक होता है । यह चार प्रकार का होता है—(1) कृष्णगुरु, (2) काष्ठागुरु, (3) दाहागुरु तथा (4) मगल्यागुरु । इनम दाहागुरु गुजरात और मगल्यागुरु केदारनाथ मे पैदा होते है । मगल्यागुरु इनमे श्रेष्ठ है । अगर काष्ठ की आकृति नाना प्रकार की होती है । संचित निर्यासवत पदार्थ के न्यूनाधिक के अनुसार किसी का वर्ण धूसर (grey) और किसी का रग काला होता है । सग्राहक जन, जिन जिन स्थानो पर निर्यास नही होता, उनमे जगह जगह छेद कर देते हैं । उत्तम अगर के पेड मे बहुत से गडे (pits) बने रहते हैं । जो अगर जल मे डूब जाए, चबाने से दातो म चिपक जाए, जिसका स्वाद कसैला एव तिक्त हो, पीसने पर जो चूर्णित हो जाए, जिसकी गध मनमोहक और जलाने पर जो चारो ओर सुगंधि फलाए उसे ही उत्तम अगर कहते है ।

गुण अगर प्रलेपनार्थ और सुगंध के लिए प्रयुक्त होता है। यह उत्तेजक (stimulant) तथा पित्तनिःसारक है। नाड़ियों (nerves) को बलप्रद, पाचक है। वात कम करने के लिए यह अन्य पदार्थों के साथ दिया जाता है। आमवात (rheumatism) में हितकर तथा वमन (vomiting) बन्द करने में भी दिया जाता है। कफ से होने वाली उरस्थल-पीड़ा में यह ब्रांडी के साथ प्रलेपित होता है तथा सिर पर लगाने से यह शिरारोग में लाभ पहुंचाता है।

अगस्त

(Aeschynomene Grandiflora)

भाषायी नामभेद	बं०—बक, म०—अगस्ता और हदगा, गु०—अगथियो, क०—अगसेय मरनू, तै०—अनीसे और अविसि, ता०—अगस्ति, सिंहली—कुतुरमुरग, इं०—Sesbania Grandi flora
संस्कृत नाम	अगस्त, बगसेन, मुनिपुष्प, मुनिवृक्ष, मुनिद्रुम।

विवरण इसके पेड़ बड़े होते हैं किन्तु इनमें डालियां घनी नहीं होतीं। वृक्ष की ऊंचाई 30 35 फुट तक होती है। कांड सीधी और 9 10 फुट की होती है। पेड़ छोटे रहने पर ही पुष्पित एवं फलित होने लगते हैं। तना दीर्घ होता है। इसके दोनों ओर 8 से 12 जोड़े पत्तों के होते हैं। फूल बड़े-बड़े चन्द्रकला की तरह सफेद और मुड़े होते हैं। पत्र (petal) इसमें दो तथा चन्द्राकार होते हैं। गर्भनली बड़ी दो इंच पुंकेशरों की संख्या 3 4 तथा पुष्पदलों की आकृति विषम होती है। कुछ काल के बाद इसमें लम्बी-लम्बी फली लगभग एक फुट की लगती हैं। हरे तथा कोमल रहने पर इसका शाक बनाया जाता है पकने पर 10 15 बीज तक होते हैं। इन बीजों की आकृति सेम के फलों की तरह होती है। इसके पुष्प चार रंग वाले—सफेद, पीला, नीला लाल और अलग-अलग वृक्ष होते हैं। पुष्पों का भी शाक बनाया जाता है। अधिकतर सफेद और पीले फूलों वाले वृक्ष पाए जाते हैं। अगस्त ऋषि इस वृक्ष के नीचे तपस्या करके प्रसिद्ध हुए तब से इसका नाम

अगस्त पडा। इस शास्त्रीय कथा का सुश्रुत ने भी उल्लेख किया है। अत यदि इसका काल 2500 वर्ष ही मान लें तो भी यह सिद्ध होता है कि यह भारतवर्ष का ही पुष्प है।

गुण अगस्त प्रशीतक, रुक्ष, वातकारक, कडवा और पित्त, कफ, चातुर्थिक ज्वरनाशक है। छाल (bark) इसकी कषली, चरपरी और बलकारक है। पत्ते तथा फूलो के रस को सूघने से शिरपीडा नष्ट होती है। मूली के रस और शहद के साथ कफ वृद्धि मे सेव्य है। इसकी छाल एव धतूरे के पत्तो को बराबर लेकर पीसकर लेप करने से शोथ (dropsy) पर बहुत फायदा होता है।

अम्लवेत

(Acidozeyfolia)

भाषायी नामभेद	ब०—थकर और अम्लवेतस, म० चुकार, गु०—अम्लवेद, फा०—तुपक, इ०—Common Soral
सस्कृत नाम	अम्लवेतस्, चक्र, शतवेधि, सहस्रनुत्।

विवरण अम्लवेत के वृक्ष फल के लिए बागो मे लगाए जाते हैं। फल को बगला भाषा मे 'थकल' कहते हैं। वृक्ष बडे और इसमे चौडी एव कर्कश बडी-बडी पत्तिया होती है। यह वृक्ष आषाढ मास म पुष्पित होता है और फूलो का रग सफेद है। फल शरत (सर्दी) काल मे पकता है। कच्चा अम्लवेत फल हरा किन्तु पकने पर हरिद्रावर्ण (greenish) का हो जाता है। फलो का आकार नाशपाती के समान किन्तु उसकी अपेक्षा तिगुना चौगुना बडा होता है। जैसे आम को सुखाकर अमचूर बनाते हैं, वैसे ही कूच विहार मे इसको भी सुखाकर खटाई बनाते हैं। यह अत्यन्त खट्टा (sour) होता है।

गुण यह मलभेदक, हल्का, अग्निप्रदीपक, पित्तकारक, रोमहर्षक, रुक्ष, बकरी के मास और लोहे की सुई को गलाने वाला, हृदय रोग, शूल (colic), गुल्म (tumour), मल (stool), तथा मूत्र के दोष (cystitis), प्लीहा (spleen), उदरावर्त (पेट मे ऐंठन), हिक्की (hiccup), अफारा (flatulence),

श्वास (asthma), खासी (cough), अजीण (constipation), वमन (vomiting), कफ तथा वात सम्बन्धी रोग नष्ट करता है।

अमलतास

(Cassia Fistula)

भाषायी नामभेद	ब०—सोतालु, म०—बाहवा, गु०—गरमाल, क०—हगके, ते०—रल्लेकाया, फा०—ख्योर शम्बर, इ०—Pudding pipe tree
सस्कृत नाम	आरग्वध, राजवृक्ष, शम्पाक, चतुरगुल, आरवेत, व्याधिघाती, कतमाल, सुवणक, कर्णिकार, दीघफल, स्वर्णाग, स्वण भूषण।

विवरण अमलतास के पेड बडे बडे होते हैं। इनकी पत्तिया चिकनी चिकनी जामुन की तरह होती है और तीन से छ तक जोडे फूटते है, यहा तक कि इनके अग्रभाग तक के भी पत्ते अयुग्म नही होते, इनकेपष्ठ और उदर दोनो भाग चिकने होते है। पीले रग के बडे तथा पाच पाच पखुडियो वाले पुष्प डाली तथा वक्ष काण्ड (tree trunk) सवत्र लगत है। एक एक मजरी (catkin) पर बहुत स पुष्प लगते है। पुष्प काल मे इसकी शोभा अपूव हो जाती है। पत्तियो के झड जाने के बाद इनकी पीले फूलयुक्त मजरिया सम्पूण वक्ष के ऊपर ऐसी दिखाई पडती है मानो पीले वस्त्र से ढक दिया गया हो। इस शोभा को देखकर स्वणमय वक्ष का नाम 'राजवृक्ष' रखा गया है किन्तु ग धरहित पाकर आश्चयचकित होना पडता है। पुष्पो के झडते ही इन पर हरे रग की फलिया, जो भीतर से पीली रहती है लगती हैं। इनकी लम्बाई एक फुट से तीन फुट तक पाई जाती है। पक जाने पर इनका रग रक्त मिश्रित काला रहता है तथा ऊपरी सतह लकडी की तरह कठोर हो जाती है। बीज बीच म रहते हैं जो प्राय शिरीष वक्ष के समान एक-दूसरे के ऊपर मालाकार बन रहते हैं।

गुण अमलतास भारी, स्वादिष्ट, मल (stool) का स्राव करने वाला तथा

ज्वर, हृदय के रोग, रक्तपित्त, वातव्याधि, शूल (colic) को हरने वाला है। इसका फल मल (stool) को मुलायम कर निकालने वाला, रुचिवधक, कुष्ठ (leprosy), पित्तरोग तथा कफ रोगो का हरने वाला है। ज्वर मे तो प्रत्येक अवस्था मे हितकर तथा मलाशय को साफ करने वाला है। मधुर एव रोचक है किन्तु फल गूदे (fruit pulp) को अकेला कभी नही देना चाहिए क्योकि यह उदर-शूल (colic) तथा अफारा (flatulence) पैदा करता है। इसके बीज वमनकारी (emetic) है।

अरणी

(Clerodendron Phlomoides)

भाषायी नामभेद ब०—गणिर और आगगन्त, म०—थोर अरेण, गु०—अरणी, क०—नरूवल, ते०—नेलिचेटट, उ०—अगीवथ।

सस्कृत नाम अग्निमथ, जय, श्रीपर्णी, गणिकारिका, जया, जयन्ती, तर्कारी, नादेयी तथा वैजयन्तिका।

विवरण अरणी सवज्ञात वृक्ष है। सब जगह पदा होता है। इसके पेड काफी ऊचे होते है। पत्ते गोल गोल, किंचित नुकीले और अत्यन्त कोमल होते हैं। पुष्प सफेद तथा गुच्छेदार होते है। इनमे बहुत सुगध निकला करती है। बसन्त ऋतु मे इन पर पुष्प आते हैं तथा कुछ दिना बाद करौंदे की तरह छोटे छोटे फल लग जाते हैं। पत्तो से भी एक सुदर मोहक गध आती है। डालिया नीचे की ओर झुकी रहती है। इसकी लकडी मे पोलापन (hollowness) अधिक पाया जाता है। इसकी दो लकडियो को रगडने से आग पैदा हो जाती है और इसी कारण इसका नाम अग्निमथ है।

गुण अरणी चरपरी, कडवी, कषैली तथा अग्निवधक है। सूजन, कफ, वात तथा पाण्डुरोग (pallor) हरने वाली है। यह दशमूल की एक प्रधान औषधि है। गर्मी देना इसकी मुख्य प्रकति है। यदि इसका अक जीण ज्वर मे दिया जाए तो तापक्रम (temperature) बढ जाया करता है।

अर्जुन

(Torminalia Arjuna)

भाषायी नामभेद — ब०—अर्जुनगाछ गाव, म०—सालढोल तथा अर्जुन वग, गु०—आसादरा, क०—अश्मर, त०—मद्दिचेट, उ०—हजल, सिंहली—कुम्बुक, आ०—उज्जुन, म०—तोरेमत्ति।

संस्कृत नाम — ककुभ, नदीसज, इन्द्रद्रु, वीरवृक्ष, धवल तथा अर्जुन के सभी बारह नाम यथा—पार्थ, धनंजय, किरीट, पाण्डव, गाण्डीवी, सव्यसाची, पृथाज, कौंतेय, कृष्णसारथि, करान्तक, कर्णारि, और इन्द्रसूनु आदि।

विवरण यद्यपि अर्जुन वन्य प्रदेशीय वृक्ष है किन्तु इसकी उपयोगिता को देख कर यह अन्य स्थानों पर भी लगाए जाते हैं। दिल्ली के पार्कों, वन्य स्थलों तथा सड़कों के किनारे आजकल बहुत लगाए जा रहे हैं। इसके पत्ते अमरूद के पत्तों की तरह आगे से चिकने तथा पृष्ठ भाग में शिरामय रूक्ष होते हैं। इसका पुष्प बहुत छोटा हरिताभ श्वेत (greenish white) वर्ण का मंजरीवत लगा होता है। वैशाख, ज्येष्ठ तथा कभी कभी आषाढ मास में पुष्पित होता है। इसका फल कमरख की तरह कंगूरेदार किन्तु गोल और कम गूदे (pulp) वाला होता है जो अगहन एवं पौष में पकता है। वृक्ष का काण्ड (trunk) स्थूल, छाल (bark) श्वेत तथा ऊंचा 40 60 फुट होता है। इसे कौह भी कहते हैं।

गुण अर्जुन छाल (rind) कषाय तथा बल्य (tonic) है। हृदय के रोगों में सेव्य है। इसकी छाल के क्वाथ से व्रण धोते हैं। पिसे हुए अंग (organs) तथा टूटी हुई अस्थियों में अर्जुन की छाल (bark) को पीसकर लेप करना चाहिए। इसकी छाल का प्रयोग रक्तस्रावों (प्रवाहिका और प्रदर के स्राव) में भी किया जाता है। अश्मरी (strangury) तथा शर्करा (suger) के रोकने में अर्जुन छाल को देते हैं। अर्जुन प्रशीतक, हृदय को हितकारी, कषैला (astringent) और क्षत (lesion), क्षय (consumption), विष (poison), प्रमेह, व्रण (ulcer), रुधिर विकार, कफ एवं आदि पित्त को नष्ट करता है। विश्लेषण करने पर इसकी छाल में टेनीन तथा राख (ash) में 34 प्रतिशत कैल्शियम कार्बोनेट पाया जाता है।

अरल



(Orocylm ...d

भाषायी नामभेद	ब०—सोनापाता और सोनालु, म०—डिडा और टेटू, गु०—अरलू क०—शोणा, त०—पेददामानु ता०—पन।
संस्कृत नाम	श्योनाक, शोषण, नट, टुटुक, मडूकपर्ण, पत्रोर्ण, शुकनास, कटवग, कुटन्नट, दीर्घवृन्त, अरलु पृथुशिम्ब तथा कटम्भर।

विवरण इसको सोनापाठा, टेंटू एव टेंटो भी कहते हैं। अरलू के वृक्ष बहुत बडे और ऊंचे होते हैं। इनमें शाखाएं बहुत कम होती हैं। काड (trunk) पत्ता के गुच्छों के सिरा से ऊंचा-नीचा होता है। छाल ऊपर से सफेद खुरदरी और भीतर से हरित-पीत (greenish yellow) वर्ण की होती है। पत्ता के गुच्छे बहुत बडे होने के कारण इसे 'दीर्घवृन्त' कहते हैं। इसकी फली तलवार की तरह दो-तीन फुट लम्बी होती है। फली के अन्दर रुई जैसा पदार्थ तथा बीज सेम (bean) जैसे निकलते हैं। फली लम्बी होने के कारण 'पृथुशिम्ब' तथा फली का अन्तिम भाग मुडा होने के कारण 'शुकनास नाम पडा।

एक भेद अरलू का और है। इसका पेड बहुत बडा होता है। फूल लाल-लाल होते हैं। फली भी बडी-बडी होती है। इसके पत्ते नीम की तरह कुछ बडे होते हैं और फल भी नीम के फल से कुछ बडा होता है। पत्ते दुर्गन्धित होते हैं। बडी फली वाले को डल्लू का पेड भी खडी बोली म कहा जाता है।

गुण अरलू अग्निदीपन करने वाला, चबाने मे चरपरा, कर्षला, प्रशीतक, कडवा और वात पित्त-कफ तथा खासी को शमन करने वाला है। इसका कच्चा फल रूखा, हृदय को हितकारी, कर्षला, रुचिकारक, हल्का, अग्निदीपक और वात तथा कफनाशक है। इसका पका हुआ गुल्म (tumour), बवासीर (piles) तथा कृमिनाशक है। देर से पचने वाला और वायु (gas) को बढाने वाला है। यह दशमूल की एक प्रधान औषधि है। इसकी छाल (bark) द्वारा पकाया हुआ तिल-तेल कर्णस्राव (otorrhoea) वाला के लिए हितकर है। छाल के चूर्ण तथा क्वाथ (decoction) म प्रयोग करने से अत्यधिक पसीना आता है। इसकी छाल द्वारा पकाया हुआ जल वातहर (carminative) समझकर शोथ (dropsy) और वात रोगी के स्नान एव धोने मे प्रयोग करते हैं।

अशोक

(Jonesia Ashoka)

भाषायी नामभेद	बं०—अस्वाल, म०—अशोक, गु०—आसापालव सिं०—होगाश।
संस्कृत नाम	अशोक, हेमपुष्प, वजुल, ताम्रपल्लव, ककेलि, पिण्डपुष्प, गंधपुष्प और नट।

विवरण अशोक एक सुन्दर, सुखद छायाप्रधान वृक्ष है। इसको कहीं-कहीं स्थानों पर अशोगि अथवा अशोगा भी पुकारा जाता है। साधारणतया इसकी डालियों में 5-6 जोड़े पत्ते होते हैं। पत्ते लगभग 2 इंच चौड़े तथा 10 15 इंच लम्बे होते हैं। प्रारम्भ में इसका रंग ताम्र (copper) वर्ण का होता है और इसी कारण इसे 'ताम्रपल्लव' कहते हैं। इसके पुष्प गुच्छों से युक्त होते हैं, पहले पुष्पित काल में नारंगी की तरह फिर अन्त में लाल रंग होने के कारण इसे 'हेम-पुष्प' कहा गया है। इसका पुष्पित काल बसन्त ऋतु है। पुष्पित होने पर मन को आनन्दित करने के कारण 'नट' कहलाता है। इसके फल लम्बे जामुन के फल की तरह गोलाकार होते हैं। पकने पर इसका रंग लाल तथा भीतर बीज का स्वाद कषैला होता है। इसके अतिरिक्त एक और पेड़ अशोक से मिलता जुलता है। इस किस्म के पेड़ के पत्ते आम की तरह, पुष्प सफेद-पीले, तथा फल लाल रंग के होते हैं। यह देवदार की जाति का पेड़ है। इसकी छाया हल्की किन्तु ऊंचाई में अधिक होता है। यह गुणों में हीन तथा गर्भाशय (uterus) पर इसकी विशेष क्रिया नहीं होती है। अतः उपर्युक्त अशोक का ही प्रयोग करना चाहिए।

गुण अशोक प्रशीतक, कड़वा, वर्ण को उत्तम करने वाला, कषैला और वातादि दोष, अजीर्ण (indigestion), प्यास, दाह (burning sensation), कृमि, शोथ, विष तथा रुधिर विकार को नष्ट करने वाला है। यह रसायन (elixir) तथा उत्तेजक (stimulant) है। इसका क्वाथ (decoction) गर्भाशय के रोगों को हरने वाला है। विशेषकर रजोविकार (menorrhagia) को नष्ट करता है। रक्ताधिकार या रक्त प्रदर में इसका प्रयोग लाभ पहुंचाता है। रज कृच्छ में इसका प्रयोग हानिकारक है, किन्तु रक्तरोधक प्रयोगों में इसका प्रयोग हितकर है।

अंकोल

(Alangium Lamorokii)

भाषायी नामभेद   बं०—आकोड़ और धोला आरड़ा, म०—अंकोली वक्ष, क०—अंकले, गु०—अंकोल, त०—उड़ीके, इं०—Tlebid Alu Retis

संस्कृत नाम   अंकोट, दीर्घकील, अंकोल, निकोचक ।

विवरण   अंकोल को कहीं-कहीं पर ढेरा भी कहते हैं। यह वृक्ष बिना प्रयत्न के पर्वतीय जंगलों की भूमि में अधिक पैदा होता है। उत्तर प्रदेश में सर्वत्र ऊसर भूमि (baren land) में यह जंगलों की भांति लगा रहता है। आजमगढ़, वाराणसी आदि जिलों तथा बंगाल के हुगली एवं मिदनापुर जिलों में अधिक पैदा होता है। शुष्क तथा उच्च भूमि में इसकी उत्पत्ति अधिक होती है। इसके वृक्ष ऊंचे होते हैं। पत्ते आम की तरह प्रायः चौड़े किन्तु कोमल होते हैं। डालियों में ऊंचे कटे हुए कोमल रोए (hair), जिन्हें कटक भी कहा जा सकता है, रहते हैं। चैत्र एवं वैसाख मास में फूल आते हैं। पुष्पकाल में वृक्ष पर कांटे नहीं होते हैं। इसके काण्डत्वक (trunk rind) दूर से देखने में शुष्क की लकड़ी तरह दिखलाई देते हैं अतः पुष्पकाल में दूर से देखने पर मालूम होता है मानो शुष्क काष्ठ (day wood) में कृत्रिम फूल लगाए गए हैं। वैसाख के ऊषा काल में जब इन पुष्पों से वायु सुरभित हो कर चलती है तो मन प्रफुल्लित हो जाता है। इसके पुष्प सफेद रंग के होते हैं। फल देखने में प्रायः लीची के फलों के आकार के छोटे तथा चिकने होते हैं और ज्येष्ठ तथा आषाढ़ में पक जाते हैं। ऊपर के फलावरण (pericarp) को दूर करने पर भीतर सफेद रंग का एक और आवरण लीची की तरह मिलता है, वह मीठा होता है। इसके भीतर लाल रंग की गुठली होती है, जिससे तेल निकलता है। सफेद आवरणयुक्त भीतर का फल खाने के काम आता है।

गुण   अंकोल चरपरा, तीक्ष्ण, चिकना, उष्ण, कपला, हलका रेचक और कृमि, शूल, आमवात, सूजन, कफ पित्त, रुधिर विकार तथा सांप, मूषक (चूहे) के विष को नाश करने वाला है। अतिसार (diarrhoea) तथा पेचिश (dysentery) में लाभप्रद है। यह चर्मरोगनाशक तथा पागल जानवरों के विष दोषशामक (demulcent) रूप में प्रयोग किया जाता है।

आम

(Magnifera Indica)

भाषायी नामभेद	ह०—आम, म०—आंबा, गु०—आम्बो, क०—माविन फल, ते०—मामिडि, फा०—आम्बा, अ०—अम्बज, इं०—Mango tree
संस्कृत नाम	आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभ । कामागो मधुदूतश्च माकन्द पिकवल्लभ ।। भावप्रकाश ।। (अर्थात—आम्र, रसाल, सहकार, अतिसौरभ, कामाग, मधुदूत, माकद तथा पिकवल्लभ ये आम के संस्कृत नाम हैं।)

विवरण भारतवर्ष में आम के पेड सर्वत्र होते हैं। काण्ड स्थूल (विशाल) फटे हुए, छाल काटने पर लाल रंग का रस निकलता है। पत्ते चिकने तथा 10 12 इंच लम्बे होते है। पुष्प मंजरी (catkin) के रूप में श्वेत और पीले। यह बसंत (spring) ऋतु में पुष्पित होता हैं। पतझड (autumn) में पत्तियां गिरकर बसंत में लाल रंग के कोमल पत्ते तथा मंजरी निकलती हैं। कुछ दिन बाद पत्ते हरे हो जाते हैं। बैसाख, ज्येष्ठ से लेकर भादों तक आम निरंतर पाए जाते हैं। भारतवर्ष में इसकी खेती होती है और सैकडो भेद हैं—बम्बइया, मालदहो, लगडा, फजली, मोहनभोग, कृष्णभोग सिंदूरिया, तोतापरी, चौसा, दशहरी, सफेदा, टिकारी, मक्खी, सिरौली इत्यादि। आम्र-फल का आकार गोल अथवा लम्बा दो तरह का होता है। स्वाद बहुत मधुर होता है। भीतर एक गुठली होती है और उसके भीतर गिरी (kernel) जो बीज है उसको बोने से आम का पेड उग आता है।

गुण आम्र पुष्प प्रशीतक, रुचिकारी वातकारक और अतिसार (diarrhoea), कफ, पित्त (bile), प्रमेह तथा दुष्ट रुधिरनाशक है। कच्चे आम के फल कपले, खट्ट, रुचिकारक, वात तथा पित्त को हरने वाले हैं। यही जब तरुण हो जाते हैं तो खट्टे, त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) तथा रक्त विकार करने वाले हैं। इन कच्चे आमो को अग्नि पर भूनकर (roast) यदि पानी में रस मिलाकर पिया जाए तो गर्मी की ऊष्णता तथा लू से रक्षा हो जाती है। कच्चे आम का ऊपर से छिलका सहित गूदा (pulp) उतार कर टुकडे करके धूप में सुखा देते हैं। इसके चूर्ण को आम्रपेशी अथवा अमचूर कहते हैं। यह स्वाद में खट्टा, स्वादिष्ट, कपला, मलभेदक अथवा दस्तावर और कफ एवं वात को जीतने वाला

होता है। पका हुआ आम मधुर, वीर्यवर्धक, स्निग्ध (demulcent), बल तथा सुखदायक, भारी अर्थात देर से पचने वाला (late digestive), वातनाशक (carminative), हृदय को प्रिय, वर्ण को उत्तम करने वाला, पित्त को बढ़ाने वाला, तथा कसैला रस-युक्त—अग्नि, कफ तथा वीर्य बढ़ाने वाला है। पेड़ पर पकने (riped) वाला आम भारी, वातनाशक, मधुर, अम्ल तथा किंचित पित्त को हरने वाला है। कृत्रिम (पाल से) पका आम—पित्तनाशक, अम्ल रसहीन और विशेषकर के मधुर होता है। चूसने वाला आम अत्यन्त रुचिकारक, बलदायक, वीर्यवर्धक, हल्का, शीघ्र पचने वाला (easy digestive), प्रशीतक, वात तथा पित्त को हरने वाला और दस्तावर (purgative) है। आम का निकाला हुआ रस बलदायक, भारी, वातनाशक, दस्तावर, हृदय को अप्रिय, तृप्तिदायक, अत्यंत पुष्टिकारक और कफवर्धक है। आम की खांड (sugar) भारी, अत्यन्त रुचिकर, देर से पचने वाली, मधुर, पुष्टिकारक, बलदायक, शीतल और वातनाशक है। दूध के साथ खाया हुआ आम वात पित्तनाशक, रुचिकारक, पुष्टिदायक, बलदायक, वीर्यवर्धक, वर्ण को उत्तम करने वाला तथा मधुर व भारी और शीतल होता है।

अमावट अर्थात आमपापड़ वस्त्र के ऊपर अथवा तश्तरियों (plates) के ऊपर आम के रस का बखेर कर धूप में सुखाकर जमाते हैं। इस प्रकार अनेक बार करने से एक मोटी परत (layer) के ऊपर परत जम जाती है जो अमावट अर्थात आमपापड़ बन जाता है। अमावट दस्तावर, रुचिकारक, सूर्य की किरणों द्वारा पकने से हल्का, प्यास, वमन, वात तथा पित्तनाशक है। आम की गुठली (stone) कषैली, कुछ खट्टी, मधुर, वमन, अतिसार तथा हृदय दाह को नष्ट करने वाली है। अमचूर में साइट्रिक एसिड है अतः यह स्कर्वी रोग अथवा मकड़ी के विषाक्त जल से फले (septic) पर लगाने से हितकर है। आम के पत्तों की राख (ash) को आग से जले स्थान में तथा किसी भी अत्यधिक गर्म तरल पदार्थ से दग्ध हुए स्थान में लगाने से लाभ होता है। आम के नए कोमल पत्ते सुखाकर चूर्ण रूप में मधुमेह (diabetes) में प्रयुक्त होते हैं। आम की सूखी लकड़ी एवं छाल कषाय (astringent) तथा कृमिहर (anthelmintic) है। आम का गोंद नीम्बू के साथ 'स्कबिज' रोग में प्रलेप करना चाहिए। आम के अत्यंत खाने से मंदाग्नि, विषम ज्वर, रुधिर दोष, अत्यन्त मल का रोध और नेत्र रोग होता है। अतः आम अधिक नहीं खाना चाहिए। अधिक आम खाने पर सोंठ (dry ginger) के चूर्ण को पानी के साथ अथवा जीरा (cumin seed) को काले नमक के अनुपान से खाएँ। कच्चे आम का अचार (pickle), मुरब्बा (Jam) तथा चटनी (sauce) बनाई जाती है। सूखी लकड़ी हवन तथा फर्नीचर बनाने में प्रयोग की जाती है।

आवला

(Emblica officinalis)

भाषायी नामभेद — ब०—आमला और आमलकी, म०—काम्वटठा, गु०—आवलो, क०—नेल्लि, ते०—उसरकाम, फा०—आमलज, सिं०—नेल्ली, इ०—Emblic Myrobalan

सस्कृत नाम — व्यस्या, आमलकी, वृष्या, जातीफलरसा, शिव, धात्रीफल, श्रीफल, अमृतफल, तिष्यफल, अमृता।

विवरण इसके पेड उद्यानो, उपवनो तथा जगलो मे सवत्र पाए जाते हैं। ये वक्ष बडे बडे, 200 से 300 फुट तक ऊचे तथा पत्तिया इमली के पत्तो से मिलती-जुलती और पीले वण की होती है। पतझड (autumn) में पत्तों के झड जाने के बाद जब शाखाओ पर जहा तहा से टहनिया निकलने वाली होती हैं तब वहा गाठ सी बन जाती हैं। वसत ऋतु आरम्भ होने से पूव ही उनसे टहनिया फूटती एव पत्ते लग जाते हैं। आश्विन मास मे छोटे छोटे पीले पुष्प भी लग जाते हैं। इसके साथ ही फल भी लगने आरम्भ हो जाते हैं और चैत्र मास तक पक कर तयार हो जात हैं। अब इसे औषधि काय मे प्रयोग किया जा सकता है। इस वृक्ष को उद्यानो म केवल फल के लिए ही नही उगाते बल्कि कार्तिकी अक्षय नवमी को इस वृक्ष के नीचे ब्राह्मण भोजन कराने का बडा माहात्म्य भी माना जाता है। होली पव से पाच दिन पूव फाल्गुन मास मे आवला एकादशी को व्रत रखकर पूजन किया जाता है। जगली आवलो के फल एकदम छोटे, जबकि रोपित आवलों के फल बडे बडे होते हैं। फलो का आकार अण्डाकार और वजन 25 से 75 ग्राम तक होता है। सामान्यतया बडे फल मुरब्बा (Jam) और च्यवनप्राश बनाने के काम मे अधिक प्रयुक्त होते हैं। फल के ऊपर ■ रखाए तथा भीतर षटकोण कठोर गुठली (stone) होती है।

गुण हरड क सभी गुण इसम विद्यमान हैं। यह स्वाद मे कषला खटटापन लिए है। आवला रक्त पित्त को हरन वाला अत्यधिक धातुवधक एव रसायन (elixir) है। आवला अम्लरस से वायु (rheumatism), मधुरस से तथा प्रकृति मे शीत होने से पित्त, और रक्ष तथा कषाय (astringent) होने से कफ को नियत्रित करता है। अत यह त्रिदोषहर है।

इन्द्र जौ

(Holarrhena Antidysentrica)

भाषायी नामभेद — ब०—इन्द्र जौ अथवा इन्द्रयव, म०—कुडयाच्यँ बीज और इन्द्रजव, गु०—इन्द्र जौ तथा इन्द्रयव, फा०—जवाने कुंविम्क तम्ररव, अ० लेसानुल असाफीर, ते०—अनक्दू बादिमा, ता०—वेप्पालं भिराई।

संस्कृत नाम — कुटजबीज, इन्द्रयव, यव, कलिंग, भद्रयव तथा फल शब्द जोड़ने पर इन्द्र के अन्य पर्यायवाची शब्द आदि।

विवरण चरक के कल्पस्थान में दो प्रकार के 'कुटज' का उल्लेख मिलता है—(1) पुंकुटज और (2) स्त्रीकुटज वृक्ष। जिसके फल बड़े, काण्ड (trunk) एवं छाल सफेद, पुष्प सफेद पुंकुटज कहे हैं किन्तु जिसके काण्ड एवं छाल काले रंग के, पुष्प श्याम (काले) वर्ण, तथा फल और फलवृन्त छोटे होते हैं, उन्हें स्त्रीकुटज कहते हैं। इस प्रकार पुंकुटज को श्वेत इन्द्र जौ तथा स्त्रीकुटज को कृष्ण इन्द्र जौ कहना उपयुक्त एवं व्यावहारिक है। श्वेत इन्द्र जौ के बीज दालचीनी जैसे रंग के और कड़वे तथा कृष्ण इन्द्र जौ मधुर एवं काले रंग के होते हैं। श्वेत इन्द्र जौ का पुष्प सफेद तथा इसका डंठल छोटा जबकि कृष्ण इन्द्र जौ का फूल बड़ा, सफेद एवं अतिसुरभित (सुगन्ध वाला) होता है। इन्द्र जौ कुटज वृक्ष का बीज होता है।

सफेद कुटज के वृक्ष मध्यमाकृति के होते हैं। बढ़ने पर इसके पत्ते कदम्ब के पत्तों के आकार के बड़े-बड़े होते हैं। शाखा एवं पत्ता का ऊपरी कोमल भाग तोड़ने पर सफेद रंग का दूध बाहर निकलता है। पुष्पनल का अग्रभाग पांच भागों में विभक्त होता है। पुष्प पत्तों की टहनी के पास से या शाखा में भी निकलते हैं। बीज जौ (barley) की आकृति के होने हैं अतः इन्हें इन्द्र जौ कहते हैं जिसके ऊपर मुलायम रुई के समान रोएं (hair) पाए जाते है। इसके पुष्प वर्षा ऋतु में मे लगते हैं। श्वेत इन्द्र जौ बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश में अधिकता से पाए जाने वाले वृक्ष है जबकि कृष्ण इन्द्र जौ बंगाल में बहुत कम और उत्तर प्रदेश के जंगलों में गोरखपुर, पीलीभीत, बरेली एवं बस्ती जिलों में अधिक पाये जाते हैं। इनके पेड़ विशेष बड़े नहीं होते और दो-तीन वर्ष में ही फलने लगते हैं। किन्तु बंगाल वाले इन्द्र जौ दस-बारह वर्ष तक नहीं फलते पाए गए क्योंकि इनके फलों एवं फलों के साथ जलवायु का गहरा सम्बन्ध रहता है।

गुण इन्द्र जौ त्रिदोषनाशक, ग्राही, चरपरा, प्रशीतक और ज्वर, अतिसार (diarrhoea), खूनी बवासीर, वमन, विसप (eruption) तथा कुष्ठ विकारो को हरने वाला, एव भूख बढ़ाने वाला है और बवासीर के मस्सा, रुधिर विकार, वात-कफ एव शूल (pain) को दूर करने वाला है।

इमली

(Tamarindus Indicus)

भाषायी नामभेद	ब०—तेतुल, म०—चिंच, गु०—आवली, क०—हुणिसे, ते—चिंचाचेट्टु, ता०—पुलि, अ०—तमरहिन्दी, इ०—Tamarind tree
संस्कृत नाम	अम्लिका, चुक्रिका, अम्ली, चुक्रा, दन्तशठा, अम्ला, चिंचिका, चिंचा, तितिडीका, तिंतिडी।

विवरण इमली के पेड सर्वत्र आसानी से पाए जाते हैं। ये ऊंचे और बहुत मोटे होते हैं। काण्ड स्थूल (stout) त्वचा (rind) फटी हुई, पत्ते आवले की तरह तथा पुष्प रक्त (blood) वर्ण के और छोटे होते है। बसंत ऋतु मे ये वृक्ष पुष्पित तथा ग्रीष्म ऋतु मे फलित होते है। फली लगभग नौ इंच लम्बी तथा एक इंच चौडी होती है। भीतर तोडने पर गूदा लाल एव सफेद रंग का मिलता है। इसके भीतर कृष्ण रक्त (blackish red) वर्ण का कठोर बीज निकलता है। फली मे 5-10 बीज तक होते हैं।

गुण इमली खट्टी भारी, वातनाशक, और पित्त, कफ, रुधिर विकार करने वाली है। पकी इमली अग्निप्रदीपक, रूखी (dry), दस्तावर, गर्म तथा कफ और वातविनाशक है।

कचनार

(Bauhinia Acuminata Roxb)

भाषायी नामभेद — बं०—काचनफुलेर गाछ, और काचन, म०— कोरल और काचन वृक्ष, गु०—चम्पाकारी और कचनार, क०—कोचाले तथा कचनार, ते०—देन काचन।

संस्कृत नाम — काचनार, काचनक, गुण्डारि, शोणपुष्पक आदि श्वेत कचनार तथा कोविदार, चमरिक, कुद्दाल, युगपत्रक, कुंडली, ताम्रपुष्प, अश्मतक एवं स्वल्पकेशरी आदि रक्त कचनार के नाम हैं।

विवरण कचनार को पुष्पों के लिए उद्यानों में उगाया जाता है। यह पुष्पों के भेद से तीन भागों में बांटा जा सकता (1) श्वेत पुष्प, (2) रक्त अथवा ताम्र पुष्प तथा (3) पीत पुष्प। गंध के भेद से पुन यह दो भागों में विभाजित किया जा सकता है (1) सुगंधित तथा (2) निर्गंधित। रक्त और ताम्रपुष्पी कचनार को अनेकों ने उद्यानों में देखा होगा। इसके पत्तों का शीर्ष भाग गंभीर रूप से चिरा रहता है मानो दो पत्ते परस्पर मिलाए गए हों, अतएव 'युग्म पत्रक' भी इसका एक पर्याय है। पुष्पों में पांच दल होते हैं जो विषमाकृति के रहते हैं। इसका पुष्पित काल चैत्र और फाल्गुन मास है। श्वेत कचनार प्राय रक्त कचनार के समान होता है किन्तु कहीं-कहीं यह शीत ऋतु में पुष्पित होता है। पीले कचनार के पेड़ बड़े-बड़े तथा पर्वतीय प्रदेशों में पाए जाते हैं अतएव इसे 'गिरिज' भी कहते हैं। इसके पुष्प भी श्वेत एवं रक्त पुष्पों की जाति वाले से काफी बड़े होते हैं। पीत कचनार के पुष्प में अधिक गुलाबी वर्ण मिश्रित होता है। श्वेत कचनार में जो पुष्प निर्गंध होते हैं उनके केशरों की संख्या दस तथा सुगंधित की पांच ही होती है। पीत की केशर संख्या दस होती है। पीत कचनार का भेद लता और वृक्ष से दो तरह का है। इसकी फली (लता पीत कचनार) बड़ी-बड़ी, दो इंच चौड़ी तथा बारह इंच लम्बी, ऊपर से मसृण (tender) रोमाच्छादित (hairy) होती है, भीतर लाल रंग का एक सेंटीमीटर व्यास के बराबर चौड़ा बीज चार-पांच की संख्या में पाया जाता है जो अत्यधिक मधुर होता है। अन्य दोनों की फली दो से तीन इंच लम्बी, तथा दाने सिरस (शिरीष) की तरह 3 4 5 की संख्या में रहते हैं।

गुण कचनार प्रशीतक (refrigerant), ग्राही, कषाय (astringent),

और कफ पित्त, कृमि, कुष्ठ (leprosy), गण्डमाला (scrofula), एव व्रण (ulcer) को नष्ट करने वाला है। कचनार की छाल (bark) और कली (buds) रसायन (elixir) और कषाय है। छाल का क्वाथ (decoction) कुष्ठ, गण्डमाला, विविध चर्मरोगो एव व्रणो म सेव्य है। गण्डमाला म शुण्ठी चूर्ण (dry ginger powder) एव माडी (rice water) के साथ कचनार छाल का प्रयोग किया जाता है। बबूल की छाल, अनार का पुष्प (Pomegranate flower) तथा कचनार मूल (root) का क्वाथ गलशत (sore throat) तथा लालास्राव (salivation) के उपचार म गरारे (gargle) द्वारा किया जाता है। कलियो का क्वाथ प्रचुर रक्तस्राव (haemorrhoids), श्लेष्मधरा कला (mucous surfaces membran), खासी, खूनी बवासीर, रक्त मूत्रता (haematuria) एव रजाविकार (menorrhagia) इत्यादि रोगो म सेवन करने योग्य है। लाल कचनार का मूल-क्वाथ अतिसार (diarrhoea) तथा उदर वायु (flatulence) मे सेवित होता है। पुष्प का चीनी के साथ पिष्ट (paste) बनाकर खाने से कब्जियत (constipation) दूर करता है। त्वक क्वाथ (bark decoction) बल्य (tonic) एव कमरोग मे हितकर है। इसके पत्ता का क्वाथ मलेरिया ज्वर की शिर पीडा को शात करता है। रासायनिक विश्लेषण करने से इस की छाल से टैनिन पदार्थ प्राप्त होता है।

कट्फल

(Myrica Sapida)

भाषायी नामभेद — ब०—कायछाल और कटफल, म०—कुम्भ्याची और शाल, क०— किरुसिवन्नि, ते०—पापरबढम फा०— उदुलवक, अ०— दारशीशवान, इ०—Box Myrtle

संस्कृत नाम — कट्फल, सोमकल्क, कैटर्य, कुम्भिका, श्रीपर्णी, कुमुदिका, भद्रा, भद्रवती।

विवरण यह कायफल के वृक्ष की छाल है। साधारणतया इसको कायफल

के नाम से भी पुकारा जाता है। इसके पेड़ पहाड़ी प्रदेशों में अधिक होते हैं, जैसे हिमालय, नेपाल, शिमला तथा अन्य पहाड़ियों पर। कटफल एक सख्त, ठोस तथा भार रंग की छाल है और इसका पुष्प पीले रंग का होता है। इसके वृक्ष बड़े तथा मोटे होते हैं। पत्ते पान के समान, पर जायफल की अपेक्षा मुहतर तथा कोमल होता है किन्तु इसकी अपेक्षा सुगंध में कम होता है। कटफल (कायफल) के फल का काटकर स्पर्श किया जाए तो यह अंगुलियों में सट (चिपक) जाता है। ज्येष्ठ के महीने में इस पर फल लगता है। फल जायफल के समान गोल लाल तथा उसके ऊपर की छाल जो जावित्री के समान होती है, रामपत्री कहलाती है। पेड़ की छाल मोटी, खुरदुरी तथा लाल वर्ण की होती है।

गुण कटफल कसैला, कड़वा चरपरा, वात, ज्वर, कफ, प्रमेह, बवासीर, खाँसी, कंठ के रोग तथा अरुचि (nausea) इन सब को दूर करता है। पहाड़ी प्रान्त वाले इसे बड़े चाव से खाते हैं, क्योंकि यह काफी स्वादिष्ट होता है। रासायनिक विश्लेषण में टैनीन, सेरीन तथा नमक पाए जाते हैं। कटफल उष्ण, रसायन (elixir) सुगंधित, गर्मी देने वाला एवं कसैला है। यह ज्वर, अतिसार (diarrhoea), आव रक्तातिसार (dysentery), गंडमाला (scrofulla), उष्णवात, कफरोग (catarrh), श्वास (asthma) पीड़ाओं आदि में प्रयोग किया जाता है। कटफल चूर्ण का उपयोग नसवार (sternutatory) रूप में होता है। उत्तेजक पदार्थों के साथ कटफल बीज पीसकर अदरक (ginger) रस के साथ मिलाकर प्रलेप (rubefacient) कर देने से लेप किए स्थान पर लाली पैदा करता है। हैजा (cholera) के कारण अंग ठंडे होने पर रोगी के हाथ-पैर तथा पिण्डलियों (calves) पर इसका चूर्ण मलकर शरीर में गर्मी बढ़ाने के लिए प्रयुक्त होता है। इसके चूर्ण के नित्य प्रयोग से मसूड़े (gums) मजबूत होते हैं। अतएव अकारण रक्त निकलना बन्द हो जाता है। चोट लगने, मांस फटने (sprain) तथा हड्डी टूटने पर प्रलेप करना लाभदायक है। कत्था (catechu), हींग (asafoetida) और कपूर (camphor) के साथ इसका लेप (paste) बनाकर बवासीर (piles) पर लगाना हितकर है। विविध वायुनाशक (carminative) औषधियों में कटफल (कायफल) का उपयोग हुआ करता है। कट्फल चूर्ण अथवा घिसकर फल का जल में मिलाकर व्रणों (ulcers) को धोने में प्रयोग किया जाता है। कटफल की पिचुवर्ति (pessaries) गोलियों में धारण करने से यह आर्तवस्राव (commenagague) की वृद्धि करता है। कटफल को चबाने से लालास्राव बढ़ जाता है और फलस्वरूप दन्तशूल (toothache) दूर हो जाते हैं। कट्फल से तयार तेल को कानों में डालने से कर्णशूल (earache) दूर होता है। इसके

फला को जब उबाला जाता है तो एक प्रकार का मोम जैसा पदार्थ (myrtle) निकलता है जो व्रणो को भरने (healing) में उपयोगी है।

कटहल

(Artocarpus Integrifolia)

भाषायी नामभेद बं०—काटाल, म०—फनस, गु०—फनस, क०—हलसिन हण्णु, ते०—पनस कापि, ता०—प्लेकापि, इं० —Jackfruit

संस्कृत नाम पनस, कटकी फल, अतिवृहत्फल।

विवरण किन्हीं किन्हीं स्थानो पर इसको कटहर अथवा कठैल भी कहते हैं। कटहल के पेड बडे-बडे होते हैं। काण्ड स्थूल, त्वचा (skin) काली, काटने पर सफेद दूध निकलता है। पत्ते प्रारम्भ मे पतले, अंत मे चौडे गोलाकार तथा चिकने होते हैं।

कटहल गुप्त पुष्प वाला वृक्ष है। बसंत से पूर्व माघ फाल्गुन मे इसकी डालिया और जडो तक मे फल लगते हैं। ग्रीष्म ऋतु मे फल पकते है। फल लम्बे गोल, मोटे, हरे रंग के ऊपर कोमल काटो से परिपूर्ण होते हैं। बडे तथा छोटे प्रत्येक किस्म के फल लगते हैं। बडे-बडे एक मीटर-तक लम्बे, ओखल की तरह मोटे गोल गोल फल भार म 20 22 किलो तक होते हैं। ये दक्षिण भारत मे बहुतायत से पैदा होते है।

गुण कटहल का पका फल प्रशीतक (refrigerant), स्निग्ध (demulcent), पित्त तथा वातनाशक (carminative), तृप्तिकारक, बलदायक, स्वादिष्ट मास को बढाने वाला, अत्यंत कफकारक, वीर्यवर्धक और रक्तपित्त, क्षत तथा व्रण विनाशक है। इसका कच्चा फल वातकारक, कषैला, भारी, दाहकारक, मधुर, बलदायक, कफ तथा मेद (मज्जा) को बढाने वाला है। कटहल के बीज वीर्यवर्धक, मधुर भारी मल को बाधने वाले तथा मूत्र बढाने (diuretic)

वाले हैं। कटहल की मज्जा (pulp) बलवर्धक, वात, पित्त एवं कफ (phlegm) की नाशक है। गुल्मी तथा पेट के रोगी कटहल का सेवन न करें।

कदंब

(Nauclea Parviflor)

भाषायी नामभेद	बं०—कदम गाछ, म०—राजकदम्ब, गु०—कदम्ब, क०—कडउ, ते०—कडि मिवेटट्ट, अं०—कदम्ब।
संस्कृत नाम	कदम्ब प्रियका नीपो वृत्तपुष्पो हलिप्रिय ॥ भावप्रकाश ॥ (अर्थात्—कदम्ब, प्रियक, नीप, वृत्त पुष्प, हलिप्रिय आदि भावमिश्र कृत भावप्रकाश में कदम्ब के संस्कृत नाम हैं।)

विवरण कदम्ब के पेड़ रेतीली (sandy) तथा क्षारमिश्रित (रेह वाली) भूमि में अधिक होते हैं। यों तो भारत में हर स्थान पर पाये जाते हैं किन्तु मथुरा-वृन्दावन की तरफ अधिक पाये जाते हैं। इसके पेड़ बड़े-बड़े छाल मोटी, खुरदरी और कुछ फटी हुई होती है। पत्र वृन्त (टहनी) एक इंच लम्बे, पत्ते महुआ के पत्तों की तरह किन्तु बड़े-बड़े होते हैं। पत्ता ऊपर से चिकना तथा पिछला भाग नसों (veins) से व्याप्त और सम्पूर्ण पत्ता लहरदार अथवा गोल होता है। इसकी छाया बड़ी सुखद और शीतल होती है। कवियों ने भी इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। रसखान ने वर्णन किया है—'जो खग हों तो बसेरो करो, नित कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन'। पुष्प बहुत छोटे छोटे, पीले पीले तथा फल के चारों तरफ केशरों की तरह बहुत कोमल हजारों की संख्या में लगे होते हैं। इसका स्वाद मधुराम्ल कषाय होता है। फलों के चारों ओर छोटे-छोटे दाने गांठों की तरह रहते हैं। इनमें फूल निकलते हैं और बीज भी लगते हैं, जब गोलाकार पुष्पित होने पर दिखाई देता है। इसी कारण इसका नाम वृत्त-पुष्प भी है। इसका पुष्पकाल ग्रीष्म ऋतु है।

गुण कदम्ब मधुर, शीतल, कषैला, खट्टा, हल्का, दस्तावर (purgative) रूक्ष, और कफ, दुग्ध तथा वातवर्धक है।

कमरख

(Averrhoa Carambola)

भाषायी नामभेद   बं०—कामराग, म०—कमर, गु०—कमरग, इं०—carambola
संस्कृत नाम   कमरग, शिराल, कारूक, शुकप्रिय।

विवरण   यह पेड़ अच्छा छायादार होता है। काण्ड चिकना तथा धब्बेदार चित्तल होता है। पत्ते गोल अंडाकार (oval) होते हैं। फूल लाल रंग के पीले और गुच्छों मे 10 15 के लगभग होते हैं। फलो पर पाच धारदार रेखाएं उभरी होती हैं। बीच मे चपटे और लम्बे बीज होते हैं। कच्चे रहने पर हरे किन्तु पकने पर श्वेत-पीत (whitish yellow) रंग के हो जाते है। वर्षा के अन्त मे पुष्पित होता है तथा शीत (winter) ऋतु म फल आता है।

गुण   कमरख प्रशीतक, ग्राही, स्वादिष्ट, खट्टी, और कफ तथा वातनाशक है। यह स्नायुदौर्बल्य (scurvy) रोधक है। खट्टा (sour) होने के कारण इसका फल चटनी बनाने के उपयोग म लाया जाता है। लोहे के दाग दूर करने के लिए इसके रस का प्रयोग किया जाता है।

करीर

(Cappearis Spinosa)

भाषायी नामभेद   बं०—करील, म०—नेवती गु०—केरडा, क०—तिप्पतिगे, तें०—केबर और कुराक, फा०—कबार, इं०—coper
संस्कृत नाम   करीर शकच अपत्र, ग्रथिल, मरुभूरुह।

विवरण   इसके पेड़ क्षार युक्त ऊसर भूमि म होते हैं अर्थात् रेह वाली मिट्टी इस वृक्ष के उत्पादन म सर्वोत्तम है। ये वृक्ष अधिक ऊंचे नही होते।

मथुरा-वृन्दावन के आस-पास बहुतायत से पाए जाते हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि रसखान ने भी इससे मुग्ध होकर लिखा है—

रसखान कब इन आंखिन सो व्रज के वन-बाग तड़ागि निहारौं।
कोटिक हौ कलधौत के धाम करीर के कुंजन ऊपर वारौं॥

किन्ही किन्ही स्थानो पर करीर को करील, टेंट अथवा डेला नाम से भी पुकारा जाता है। पुष्प गुलाबी होत हैं। ये वक्ष फाल्गुन चैत्र मे पुष्पित होते हैं। इस कांटेदार वृक्ष के फल गोल-गोल बेर (plum) के समान होते हैं। जिनके भीतर बीज भी गोल होता है।

गुण करीर चरपरा, कडवा, स्वेदजनक (sudorific), प्रकृति मे गरम, दस्तावर (purgative), तथा बवासीर (pile), कफ (phlegm), वात, आव, विष, सूजन (inflammation) और व्रण विनाशक है।

करज

(Pangamia Glabra Vent)

भाषायी नामभेद बं०—ढहरकरज और नाटाकरज, म०—चोपडाकरज तथा घाणेराकरज, क०—नाप्रसीय मरनू और थारू बहु लिगिलु, गु०—करज, तें०—कानुगचेट्टु, इं०—smooth leaved

संस्कृत नाम करज, नक्तमाल करज, चिर बल्वक।

विवरण यह ऊंचा बहुशाखी उत्तम छाया तरु है। यह प्राय आर्द्रभूमि मे पैदा होता है। अतएव पल्लव, नदी तीर, पुष्करिणी इत्यादि स्थलो पर अधिक पाया जाता है। बंगलाभाषा मे इसीलिए इसे 'ढहरकरज' कहते हैं। कवि कालिदास ने करज को नक्तमाल कहकर याद किया है—

"स नम्मदारोधसि शीकरार्द्रै मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले"

—रघुवंश, 8 22

इसके पत्ते पिलखन की तरह चिकने दिखाई देते हैं तथा ऊपर से नील एवं पीछे से हरित (greenish) वर्ण के रहते हैं। वृक्ष के काण्ड (trunk), त्वक (rind), कोमल और मुलायम एवं स्थान स्थान पर विशेष चिह्न की आकृति वाले होते हैं। नीले रंग का पुष्प पुष्पदंड में गुच्छाकार लगा होता है। पुष्पदण्ड पत्राढ्य बड़ा तथा पुष्पित काल चैत्र वैसाख एवं वर्षा ऋतु है। फूल प्रायः फलीदार वृक्षों के समान ही होते हैं। फली (pods) अण्डाकृति एक-दो इंच बड़ी, चपटी, आरंभ तथा मध्य भाग में त्रिकोण और अंत में कुछ मुड़ी हुई रहती है। प्रत्येक फली में एक बीज लालवर्ण के सेम के बीज की आकृति का रहता है। करंज का एक और भेद पूतिकरंज अथवा घीयाकरंज भी है जिसको प्रचुर मात्रा में कंटक (thorns) होने के कारण कांटाकरंज भी पुकारा जाता है। इसके जोड़े-जोड़े पत्तों के बीच कांटा होता है। पुष्प बड़ा एवं गंधक वर्ण का और फली गोल, बड़ी तथा अधिक कांटों से ढकी होती है। प्रति फली में 2 5 बीज निकलते हैं। अधिक कंटकपूर्ण होने के कारण छूना कठिन है अतएव बगीचा की मेड़ (ridge) पर इसे रक्षार्थ लगाते हैं। इसका लैटिन नाम Coesalpinia Bonducella Fleming है।

गुण करंज चरपरा, तीक्ष्ण उष्ण प्रकृति वाला, योनिदोषों को हरने वाला, और कुष्ठ, गुल्म (tumour) बवासीर कृमि, व्रण तथा कफनाशक है। करंज के पत्ते तीव्र विरेचक (purgative), प्रकृति में उष्ण (stimulant), पित्तकारक, हल्के कफ-वात, बवासीर (piles), कृमिहर (anthelmintic) तथा शोथहर है। इसके फल कफ-वात, बवासीर, प्रमेह (diabetes), कृमि तथा कुष्ठ (leprosy) को नष्ट करते हैं। घियाकरंज के गुण भी करंज के ही समान हैं।

करंज के बीज तिक्त (bitter) तथा पीले रंग के 27 प्रतिशत तेल, जिसे 'नक्तमाल तेल' कहते हैं, से पूर्ण रहते हैं। इसका तेल उष्ण (stimulant) तथा कीटनाशक (parasiticide) है। समभाग नींबू रस के साथ यह तेल विविध चर्म रोगों में उपयुक्त है। करंज के पत्ते उष्ण, वायुनाशक तथा रसायन हैं। यह ग्रहणी, मिर्गी (epilepsy), उदरवायु (flatulence), कुष्ठ, अतिसार एवं प्लीहा-यकृत (spleen liver) में उपयोगी है। इसकी जड़ का रस प्रशीतक (refrigerant) तथा स्निग्ध (demulcent) है। इसके पत्तों के क्वाथ में स्नान करने से वात वेदना (rheumatic pain) शांत होती है। नारियल दुग्ध तथा चूने के पानी के साथ इसकी जड़ का उपयोग सुजाक (gonorrhoea) में किया जाता है। इसके पुष्प मधुमेह (diabetes) और बीज कुक्कुर खांसी (whooping cough) में उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

कूजा

भाषायी नामभेद	गु०—कुजडो।
संस्कृत नाम	कुब्जक, भद्रतराणि, वृहत्पुष्प, अतिकेशर, महासहा, कटवादया, नीला, अतिकुलसकुला।

विवरण कूजे के वृक्ष बहुत बडे बडे होते हैं। वन-उपवनो मे सवत्र पाए जाते हैं। पत्ते गुलाब की तरह किन्तु कुछ बडे होते हैं। पुष्प सुगन्धित, बडा तथा बहुकेशर-युक्त होने से 'वृहत्पुष्प' तथा 'अतिकेशर' कहलाता है। इसके दो भेद हैं—काटेदार और दूसरा बिना कटक के। इसके पुष्पो का रग नीला श्वेत (whitish blue) होता है। भ्रमर अधिक सुगन्ध के कारण इस पर जुटे रहते हैं अत 'अलिकुलसकुला' कहते है। फूल का आकार गुलाब के पुष्पो की तरह होता है किन्तु गुलाब से ये बडे होते हैं।

गुण कूजा सुगन्धित, स्वादिष्ट, कषैला, दस्तावर, तीनो दोषो (वात, पित्त, कफ) को हरने तथा शात करने वाला, वीर्यवधक और शीतनाशक है।

केवडा

(Pandanus Qsoratissims)

भाषायी नामभेद	ब०—गाछ और सोणाकोपा, म०—पादरा केवडा तथा केतकी, गु०—केवडो, क०—केदग, ते०—मुगली पुवु एव मोगिली-चेछ, फा०—करजा, आ०—कादी, इ०—Pandanus
संस्कृत नाम	केतक, सूचिकापुष्प, जम्बुक, क्रकच्छद, स्वण केतकी, लघुपुष्पा, सुगधिनी आदि।

विवरण ;,इसकी कही कही पर पीला केवडा भी जाति है। इस जाति मे स्वण केतकी, लघुपुष्पा अथवा सुगधिनी नाम सम्मिलित हैं। केवडा के पेड बहुत बडे नही होते। अधिक से अधिक 8-10 फुट ऊचे होते हैं। इसके तने से डालिया

निकलती हैं और वही भिन्न होकर पेड का रूप धारण कर लेती हैं। काण्ड(trunk) वक्र (curved) तथा प्राचीन होने पर भी निकलता रहता है। काण्ड का मध्य भाग ठीक करमकल्ला की तरह भीतर से कोमल (soft) होना है। बरगद की तरह इसके काण्ड से जटाए निकलकर जमीन मे आकर घुस जाती हैं। पत्ते, बिना टहनिया के काण्ड के साथ लगे होते हैं जिनकी लम्बाई 2½-3 फुट, कोमल, मध्य भाग नोकदार काटो से पूर्ण तथा अन्त मे नोकदार होते हैं। यह पुष्प भद से दो प्रकार का है - एक 'पुपुष्प', दूसरा 'स्त्रीपुष्प' और यही कारण है कि भावमिश्र ने इसको 'केतक' तथा 'केतकी' के नामो से प्रयोग किया है। इसका गर्भाधान पक्षियो, तितलियो एव भ्रमरो द्वारा पुष्प पर बैठने के कारण होता है। पुष्प रग बिरंगे होते हैं जिससे भ्रमर अधिक आकर्षित होते हैं। फल नारियल की तरह बडा होता है। पुपुष्प पराग से पूर्ण होता है।

गुण केवडा चरपरा, मधुर, हल्का, कडवा और कफनाशक है। पीला केवडा प्रकृति में गरम, कडवा तथा नेत्रा को हितकारी है। केतकी पुष्प उष्ण, स्वेदकारी (sudorifia) तथा आक्षेप (convulsions) को दूर करने वाला है। यह दुबलता, मूर्छा, शिरोभ्रम रोग म सेवन करने योग्य है। साधारण तथा पुराने सिर क रोगो मे यह लाभ करता है। केतकी मूल (root) को दूध के साथ पीस-कर सेवन करने से गर्भस्राव (abortion) की शका नही रहती।

कैथा

(Feronia Elephantinum)

भाषायी नामभेद बं०—कयेथ और कयेत बेल, म०—कपठ, गु० -कोठ, ते०—वेलगु ले०—एलागा काया, इ०—Wood Apple

संस्कृत नाम कपित्थ, दधित्थ पुष्पफल, कपिप्रिय, दीर्घफल, दन्तशठ।

विवरण इसको कुछ लोग कथ भी कहते हैं। इसके वृक्ष बहुत बडे-बडे होते हैं। काण्ड स्थल, छाल (bark) सफेद और फटी होती है। पत्ते छोटे, चिकने और मेहदी की तरह किन्तु कुछ चौडे होते हैं। पतझड मे इसके पत्ते गिरकर यह पुन बसत ऋतु मे पल्लवित हो जाता है। इस दशा म यह बिल्कुल पत्रहीन नहीं होता बल्कि कुछ पत्ते लगे रह जाते हैं। वर्षा के आरम्भ मे तथा ग्रीष्म ऋतु का

समाप्ति पर यह वृक्ष पुष्पित होता है। फूल छोटे छोटे और सफेद होते हैं। फल बडे, गोल, ऊपर सादा और क्रकश सफेद होते हैं। पौष मास मे फल पकते हैं अत इन्हें 'चिरपाकी' कहते हैं। पके कैथ के फल बहुत सुगन्धित होते हैं। गूदे (pulp) मे बीज रहते हैं। पत्तो से भी एक तरह की विशेष गध निकलती है।

गुण कैथ का कच्चा फल कपला, हल्का और मोटापा कम करने वाला है किन्तु पका फल भारी और प्यास, हिचकी, वात एव पित्त को नष्ट करने वाला है। इसका स्वाद कषैला, अम्ल, कठ (throat) को शुद्ध करने वाला, ग्राही[1], वातनाशक (carminative), कोमल पत्ता पाचक एव मूत्रल और अजीर्ण (constipation), अग्निमाद्य (dyspepsia), अतिसार (diarrhoea) तथा शर्करा (sugar) म सेव्य है। इसका पका फल गर्मी शान्त करने वाला, श्रमहर, बच्चो के स्नायुदौर्बल्य (scurvy) का दूर करने वाला, पाचक और बलकारक है। इसका शर्बत, अति लालास्राव (salivation), गलक्षत (sore throat) एव मसूढो (gums) को [illegible]
कीट दशन मे हितकार

खजूर

(1 Phoenix montana, 2 Phoenix sylvestris
3 Phoenix dactylifera)

भाषायी नामभेद	ब०—खजूर और छोहारा, म०—शिंदी और खजूरी, गु०—खजूरी और छुवारी एव खारिक, क०—इचिलु और सिह-इचिलु, त०—इटा बेट्ट तथा खजूर पडु, फा०—तमर रूतब अ०—खुर्मातर एव खुर्माखुष्क, इ०—Date palm
संस्कृत नाम	भूमिखर्जरिका, स्वाद्वी, दुरारोहा, मदच्छदा, स्कधफला, काकक्कटी स्वादुमस्तका आदि।

1 जो पदार्थ अग्नि को प्रदीप्त करता है, कच्चे को पकाता है गर्म होने के कारण गीले को सुखाता है वह 'ग्राही' कहलाता है। उदाहरणार्थ—सोठ जीरा, गजपीपल।

विवरण खजूर के पेड़ में एक काण्ड (trunk) से ही बढ़कर पत्तियां निकलती हैं। इसमें डालियां नहीं होतीं बल्कि पत्तों की टहनियों के ऊपरी भाग पर जोड़े से जोड़े एक डेढ़ फुट लम्बे पत्ते होते हैं। यह मरुभूमि, अरब, बसरा और बगदाद आदि क्षेत्रों में बहुत पैदा होते हैं। इस पेड़ में स्त्री पुरुष दोनों जाति के वृक्ष होते हैं। एक प्रकार का खजूर और होता है जिसे 'पिण्डखजूर' कहते हैं। यह काबुल, कंधार इत्यादि पश्चिमी देशों में पैदा होता है। एक और अन्य गोलाकार खजूर होता है जिसे 'छुहारा' कहते हैं। यह भी पश्चिमी देशों में ही उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त 'सुलमानी खजूर' भी पश्चिमी देशों (अरब, ईरान, इराक, मस्कत आदि) से आयात किया जाता है।

गुण सभी प्रकार के खजूर शीतल, रस तथा खाने में मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक, हृदय को प्रिय, भारी (late digestive), प्यास बुझाने वाला, ग्राही, वीर्यवर्धक, बलदायक, और क्षत (lesion) क्षय (consumption) रक्तपित्त (haemoptysis), उदरवायु, वमन, कफ, ज्वर, अतिसार, भूख प्यास, खांसी, श्वास, मद (intoxication), मूर्छा, वात पित्त तथा मद्य (alcohol) से उत्पन्न रोगों को नष्ट करते हैं। ये परिश्रम, भ्रान्ति और जलन को दूर करते हैं। खजूर पोषक, बल्य (tonic) तथा मूत्रल (diuretic) है। ज्वर अथवा शीतला (pox) होने के बाद की दुर्बलता को दूर करने के लिए इसको दूध के साथ सेवन करते हैं। खजूर का रस पेशाब लाने वाला शर्बत है। इसके रस से एक प्रकार का मद्य (alcohol) बनाते हैं। खजूर स्नायुदौर्बल्य के लिए हितकारक है

खिरनी

(Mimusops Hexendra)

भाषायी नामभेद बं०—क्षीरणी और राजणी म०—खिरणी, गु०—रायण क०—सनमारित्वे, ता०—पल्ल, इं०—Obtuse leaved Mimusops

संस्कृत नाम राजादन, फलाध्यक्ष, राजन्या, क्षीरिका।

विवरण खिरनी को सुन्दर छायाप्रधान वृक्षों में गिना जा सकता है। काष्ठ

साधारण, पुराने वक्षो मे कोटर-युक्त, त्वचा मे तीन परत (layer) होते हैं। ऊपर का अक्कश अर्थात प्राणधारक, बलजनक, सधानकारक (अस्थि एव क्षत को जोडने वाला) आदि तथा मटमले (brown) रग का, मध्य स्तर सब्जवण (greenish colour) का भीतरी लाल वण का दुग्धपूण होता है। पत्ता लम्बा चौडा, उभय पष्ठ चिकने, हरे रग के। पत्रो की टहनी दीघ तथा गोल होती है। पुष्पदण्ड सशाख तथा प्रत्येक शाखा (branch) एक पुष्पधारी होती है। फल बेर की तरह गुच्छाकार, कच्चे हरे किन्तु पकने पर पीले हो जाते हैं। कच्चे फलो मे काटने पर दूध निकलता है। गिरी (kernel) पीली तल युक्त। छाल (rind) का स्वाद तिक्त (acrid) और कडवा (bitter) है।

गुण खिरनी का फल वीयवधक, बलदायक, स्निग्ध (demulcent), प्रशीतक (refrigerant), भारी और प्यास, मूर्छा, मद, भ्रान्ति, क्षय (consumption), तीनो दोषो (कफ पित्त वात) तथा रक्त विकारनाशक है। इसकी छाल (bark) कषाय (astringent) है। मौलसिरी इत्यादि वक्षो की छाल जिस प्रकार उपयोगी है ऐसे ही यह भी होता है। इसके बीजो का प्रलेप गभस्राव कराने वाला है। तेल स्निग्ध एव मदकारी (narcotic) है। पका हुआ फल सुस्वादु एव धातु साम्यकर है।

खैर

(Acacia Catechu)

भाषायी नामभेद — ब०—खयेरगाछ और खदिर वक्ष, म०—खर, क०—कॅपिन खर, ते०—चण्डचेट्टू, इ०—Catechu

संस्कृत नाम — खदिर, रक्तसार, गायत्री, दन्तधावन, कटकी, बालपत्र, बहुशल्य, यज्ञिय।

विवरण खर के वक्ष वनो तथा जागल भूमि मे होते हैं और अधिकतर कूचबिहार, नैनीताल एव नेपाल की तराई मे पाए जाते हैं। पत्ते बबूल की तरह दीघवन्त मे अनेक जोडे पत्तो से युक्त होते हैं। काण्ड स्थूल, त्वचा फटी हुई,

शाखाकाण्ड काटेदार, काटे छोटे एव वक्र। इसका पुष्पित काल ग्रीष्म ऋतु के अत तथा वर्षा के प्रारम्भ मे होता है। यह वृक्ष कत्था के नाम से लोकप्रिय है।

गुण खैर शीतल, दातो को हितकारी, कडवा, कपैला, और खुजली, खासी, अरुचि, मेद, कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण, श्वेत कुष्ठ (leucoderma), सूजन, पित्त, रुधिर विकार, पाण्डु रोग (pallor), कोढ (leprosy), तथा कफ (phlegm) को नष्ट करता है। रासायनिक विश्लेषण करने पर कैटेच्यूटनिक एसिड 35 प्रतिशत, खदिरसार (catechin) इत्यादि मिलते हैं। खैर बलप्रद तथा रसायन (alterative) है। ज्वर निवारक एव पाचक है। जिस ग्रहणी रोग (dyspepsia) मे गुदा (anus) मे वेदना, जलवत् मलस्राव अधिक होता है उसमे खैर सेव्य है। बच्चो के आमातिसार (diarrhoea), रक्तातिसार (dysentery), विषम ज्वर (intermittent fever) तथा स्नायुदौर्बल्य (scurvy) मे हितकर है। स्वरभग तथा गलक्षत मे इसका क्वाथ उत्तम है। मसूढो म दर्द, रक्तस्राव, लालास्राव (salivation) और प्रदर (leucorrhoea) मे यह हितकर है। काकल (uvula) के बढ जाने पर बहुत कष्ट होता है अत इस कष्ट से छुटकारा पाने के लिए खैर के रस का चूपण करना चाहिए। प्रदर मे खैर के क्वाथ(decoction) की पिचकारी हितकारक है। पुराने व्रणो (ulcers) मे चर्बी के साथ मिलाकर लगाना लाभदायक है। किन्तु शीघ्र लाभ प्राप्त करने के लिए थोडा सा तूतिया (copper sulphate)मिलाना श्रेयस्कर होगा। अधिक मात्रा मे सेवन से खैर पुरुषत्व-नाशक एव गर्भस्रावक भी है।

गुग्गुल

(Balsamo Dendron Roxberghie)

भाषायी नामभेद बं०—गुग्गुल, म०—गुग्गुल, गु०—गुग्गुल क०—इक्डोल, फा०—बोएजहूदान, अ०—मुक्कोले अजक, इ०—Indian Delum

संस्कृत नाम गुग्गुल, देवधूप, जटायु कौशिक, पुर, कुम्भ, उलूखलक, महिषाक्ष, पलकषा।

विवरण गुग्गुल के वृक्ष भारतवर्ष, अरब तथा अफ्रीकन देशों में पाए जाते हैं। गुग्गुल वृक्ष का गोंद ही गुग्गुल के नाम से परिचित है। भारतवर्ष में राजपूताना, असम और बंगाल में इसके पेड़ पैदा होते हैं। यह पांच प्रकार का होता है (1) महिषाक्ष, (2) महानील, (3) कुमुद, (4) पदम तथा (5) हिरण्य। जो गुग्गुल भौंरे अथवा अंजन की तरह वर्णवाला हो उसे महिषाक्ष कहते हैं, बहुत नीले रंग वाले को महानील, कुमुद की तरह कांतिवाला रंग का गुग्गुल कुमुद कहलाता है। माणिक्य की तरह चमकने वाला पदम तथा सोने की तरह वर्ण वाला गुग्गुल हिरण्य अथवा हिरण्याक्ष कहलाता है। महिषाक्ष और महानील हाथियों के लिए, कुमुद एवं पदम घोड़ों के लिए तथा हिरण्याक्ष विशेषकर मनुष्यों के लिए हितकारक होता है।

शीतकाल में इसके काण्डत्वक (trunk rind) को फाड़कर काण्ड से गिरे हुए गोंद को एकत्र करते हैं। इसे एकत्र करने के लिए कोई बर्तन (ware) आदि नहीं रखा जाता अपितु भूमि पर ही संगृहीत होता है। अतः गुग्गुल में बहुत से कंकर-पत्थर इत्यादि पाए जाना स्वाभाविक है। इसके पत्ते बिना नोकवाले किन्तु छोटे छोटे नीम के पत्तों के समान होते हैं। फूल लाल रंग का छोटा पांच पखड़ी (petal) वाला मंजरी (catkin) के मध्य से निकलता है। फल छोटे-छोटे बेर के समान तीन किनारी (धार) वाले होते हैं। इन फलों को गूगलिया कहते हैं।

गुण गूगल स्वच्छ, कड़वा, प्रकृति में उष्ण, पित्तकारक (cholagogue), दस्तावर (purgative), कषैला (astringent), चरपरा, अत्यन्त हल्का, टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने वाला, वीर्यकारक, स्वर को हितकारी, रसायन (elixir), अग्नि को दीपन करने वाला, चिकना, बलवर्द्धक तथा कफ (phlegm), वात व्रण, अपची (indigestion), प्रमेह (diabetes), कुष्ठ (leprosy), आमवात, (rheumatism), ग्रंथि (glands), सूजन (inflammation), बवासीर, गण्डमाला (scrofula) तथा कृमिरोग को नष्ट करने वाला है। गुग्गुल मधुर (dulacis) होने से वात को, कषैला होने से पित्त को तथा कड़वा होने से कफ (phlegm) को जीतता है, अतएव यह त्रिदोषशामक है। जो गुग्गुल नवीन होता है वह पुष्टि देता है तथा मैथुन शक्ति बढ़ाता है किन्तु पुराना हो तो मोटापे को कम करता है। जो गुग्गुल स्निग्ध (demulcent), स्वर्णसदृश, पकी जामुन के वर्ण का, सुगंधित और पिच्छिल[1] होता है, किन्तु जो सूखा, दुर्गंधित हो और जो अपने वर्ण एवं गंध को छोड़ चुका हो, वह पुराना गुग्गुल कहा जाता है। पुराना गुग्गुल शक्तिहीन होता है।

---

1 जो द्रव्य प्राणधारक बलजनक, सधानकारक अर्थात हड्डियों एवं क्षत को जोड़ने वाला और श्लेष्माजनक होता है उसे 'पिच्छिल' कहते हैं।

गुग्गुल के सेवन से पूर्ण लाभ की इच्छा रखने वाले खट्टे, मिर्च, तीक्ष्ण पदार्थ, अजीर्णकारक कच्चे पदार्थ, मैथुन, परिश्रम, धूप, मदिरा तथा क्रोध त्याग देवें।

गूलर

(Vicus Glomerata)

भाषायी नामभेद	बं०—यज्ञ उदुम्बर, म०—उंबर, गु०—उंबरो, क०—अत्ति, तैं०—अत्ति चेट्टु, फा०—अंजीरे, अ०—जमीज, इं०—Fig tree
संस्कृत नाम	उदुम्बर, जन्तुफल, यज्ञांग, हेमदुग्धक।

विवरण इसके पेड बड़े विशाल सवत्र पाये जाते हैं। स्कंध (धड़) मोटे, त्वचा (rind) श्वेत हरित (greenish white), काटने पर दूध निकलता है। पत्ते छोटे कोमल होते हैं। पुष्प गुप्त होता है। पुष्पकाल एवं फलकाल ग्रीष्म ऋतु में एक ही है। कच्चे फल हरे किन्तु पके फल लाल होते हैं। स्वाद मे मधुर होते हैं। फलों के भीतर लम्बी पूछ तथा पंख वाले बहुत पतंगे होते हैं। इसीलिए 'जन्तु-फल' नाम है। काटते समय दुग्ध को सफेद किन्तु हवा लगते ही पीला होते देखा गया है। इस फल के विषय मे निम्न पहेली प्रसिद्ध है—

> वन मे रहता, वनफल खाता, वनचारो ने देखा नाहिं।
> चार महीने वर्षा बीत, पर यारो का भीगा नाहिं॥

गुण गूलर प्रशीतक रूखा, भारी, मधुर, कसैला, व्रण को उत्तम करने वाला, व्रणशोधक और पित्त, कफ तथा रक्त विकार शामक (demulcent) है। यह वायुनाशक (carminative), पाचक तथा रक्त प्रदर, रक्तपित्त तथा रक्त वमनादि मे हितकर है। इसके मूल (root) का रस चीनी और काला जीरा मिलाकर सूजाक (gonorrhoea) म प्रयोग किया जाता है। जड का क्वाथ

पकने पर, श्वेत प्रदर (leucorrhoea) और क्षत (lesion) शोधन मे उपयोगी है। इसका रसायन (elixir) है तथा बल-लाभ के लिए उत्तम है।

चन्दन

(Sandal Wood)

साधारणतया चन्दन तीन प्रकार का होता है (1) श्वेत चन्दन (santalum album), (2) पीत चन्दन (santalum flonum) और (3) रक्त चन्दन (pterocarpus santalum)। इन तीनो प्रकार के चन्दन का परिचय यहा दिया जा रहा है—

श्वेत चन्दन
(Santalum album)

भाषायी नामभेद	हि०—चन्दन, म०—चन्दन, ते०—चन्दन, गु०—सुखड, क०—श्रटठपचेगध, फा०—सन्दल सफेद, अ०—सन्दले अबीयद, इं०—Sandal wood
संस्कृत नाम	श्रीखड, चन्दन, भद्रश्री, तैलपर्णिक, गन्धसार, मलयज, चन्द्रद्युति।

विवरण मैसूर राज्य मे ये बहुतायत से पाए जाते है। सफेद चन्दन बहुशाखी होता है। इसकी त्वचा (rind) फटी हुई, पत्ते चौडे किन्तु अग्र भाग पतला नहीं होता। पुष्प बहुसख्यक तथा छोटे होते हैं। छोटी अवस्था मे अपनी विकसित स्थिति में फूल हल्के पीले तथा पूर्ण विकसित होने पर बैंगनी वर्ण के हो जाते हैं। इसके पत्तों, पुष्पो एव त्वचा से किसी प्रकार की गन्ध नही आती। फल गोल, मसृण तथा पक जाने पर काले रंग के हो जाते हैं। पहले चन्दन वृक्ष काटा जाता था किन्तु जब से यह खोज की गई कि इसकी जड मे सर्वाधिक तेल

रहता है तब से इसका काटना बन्द हो गया और उसे अच्छी प्रकार खोदकर अब निकाला जाता है। उत्पादित चन्दन वृक्ष में सार भाग को छोड़ कर शेष भाग पृथक कर दिए जाते हैं। संचित सार के अनेक टुकड़े उनके गन्ध, सार तेल इत्यादि के भेद से पृथक-पृथक कई श्रेणियों में विभक्त कर विक्रयार्थ तैयार करते हैं। चन्दन मैसूर से बम्बई और फिर वहाँ से यूरोप, अमरीका तथा अन्य विदेशी शहरों को भेजा जाता है। मैसूर राज्य में चन्दन काष्ठ से तेल निकालने की भी व्यवस्था है। चन्दन की जड़ में बहुत तथा उत्तम तेल पाया जाता है। तेल स्वच्छ एवं हल्के पीले रंग का होता है। चन्दन तेल और 'चोया' तेल में बहुत समानता है। दोनों के वर्ण गन्ध एक ही हैं किन्तु तेल निष्कासन प्रणाली में अन्तर है। उड़ीसा में चोया पान के साथ खाया जाता है।

श्वेत चन्दन पाँच प्रकार—गोशीर्ष, वेटट, तैलपर्ण, सुक्कड तथा बब्बर, का होता है। ये भेद उत्पत्ति तथा काल के अनुसार कत्तन (कलम) से किए जाते हैं। हरे ताजे पेड़ को काटकर जो चन्दन संग्रह करते हैं उसे 'वेट्ट' और स्वयं सूखे हुए चन्दन के पेड़ की लकड़ी को 'सुक्कड' नाम देते हैं। ऐसा देखा गया है कि उर्वर तथा रसयुक्त भूमि में पैदा हुए पेड़ की अपेक्षा शुष्क और कंकरीली भूमि के चन्दन में तेल भी अधिक संचित होता है। मलयाचल पर होने वाला चन्दन मलयज अथवा भद्रश्री के नाम से प्रसिद्ध है। अतः श्वेत चन्दन के भेद उसके काष्ठ (wood), उत्पत्ति स्थान, संग्रहकाल तथा भेद से गुणान्तर प्राप्त होने से ही किए जाते हैं।

गुण : जो चन्दन स्वाद में कड़वा, घिसने में पीला, काटने में लाल, ऊपर से देखने में सफेद और गाँठदार तथा कोटरयुक्त हो वह चन्दन उत्तम होता है। चन्दन प्रशीतक, रूखा कड़वा, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला, हल्का और परिश्रम हरने वाला, कफ, प्यास (तृषा), पित्त, रुधिरविकार तथा दाह को नष्ट करता है। चन्दन की लकड़ी में एक उड़नशील (volatile) सुगन्धित तेल 2 से 2.5 प्रतिशत रहता है, साथ ही एक काले रंग का राल (resin) तथा टैनिक एसिड भी रहता है। इस लकड़ी तिक्त (bitter), प्रशीतन (refrigerant) तथा अवसादक (dimulcent) होती है। इसके तेल का सेवन करने से मुख शुष्कता, अत्यधिक प्यास, शूलवत वेदना एवं कमर में भारीपन अनुभव होता है। तीव्र ज्वर में रोगी के शरीर में दर्द रहने पर श्वेत चन्दन का प्रलेप किया जाता है। गुलाब-जल और कर्पूर के साथ इसका प्रलेप सिर शूल (headache) और दाह तथा शोथयुक्त अंग एवं चर्मविकार युक्त त्वचा (skin disease) पर लगाया जाता है। चन्दन का तेल स्तम्भक (astringent) मूत्रक (diuretic), कफनिस्सारक (expectorant) और उष्ण होता है। इलायची तथा वंशलोचन के साथ यह तेल उष्णवात, खाँसी, मूत्राशय (urinery bladder) तथा गुर्दे की जलन और पुराने अतिसार

(chronic diarrhoea) मे सेव्य है । चन्दन बीज की पिचुवर्ति योनि (vagina) मे धारण करने से गर्भस्राव हो जाता है ।

पीत चन्दन
(Santalum Flonum)

भाषायी नामभेद	ब० पीत चन्दन, गु०—पीत चन्दन, म०— पिवला चन्दन, फा०—सन्दल अजीयज, इ०—yellow sandal
संस्कृत नाम	कलम्बक, कालीय, पीताभ, हरिचन्दन, हरिप्रिय, कालसार तथा कालानुसारक ।

विवरण—इसको पीला चन्दन भी कहते हैं । इसके पत्ते, पुष्प, बीज, लकडी सब श्वेत चन्दन की ही तरह के रहते हैं केवल काष्ठ के रंग मे पीलापन पाया जाता है । धन्वन्तरि ने 'कन्योत्थ पीतकाष्ठ' वाक्य मे श्वेत चन्दन की तरह पीत चन्दन का भी उत्पत्ति स्थान मलयाचल पर्वत को ही स्वीकारा है । भावमिश्र तथा धन्वन्तरि दोनो ने ही श्वेत चन्दन को घिसने पर यदि वह पीला हो जाए तो उत्तम माना है । अत श्वेत चन्दन और पीत चन्दन [illegible] पाये जाते हैं । निष्कर्षत उत्तम श्वेत चन्दन ही पीत [illegible]

गुण पीत चन्दन मे भी वही गुण होते है जो श्वेत चन्दन मे पाए जाते है । यह झाइं (freckles) को नष्ट करता है । उडीसा प्रदेश मे पीत चन्दन अनुलेपनार्थ अधिक प्रयुक्त होता है ।

रक्त चन्दन
(Pterocarpus Santalum)

भाषायी नामभेद	ब०—रक्त चन्दन, क०—रक्त चन्दन, म०—रक्त चन्दन, गु०—रक्ताजली, ते०—रक्त चन्दनम, ता०—सेनशाण्डनम्, फा०—सदले सुख, अ०—सन्दले अहमर, इ०—(red sandal)
संस्कृत नाम	रक्त चन्दन, रक्ताग, क्षुद्र चन्दन, तिलपर्ण, रक्तसार, प्रवालफल ।

विवरण रक्त चन्दन के वृक्ष सिरस के पेड की तरह बडे बडे तथा ऊंचे होते है । पत्ते कुछ लम्बे तथा अग्रभाग गोल होता है । ठीक तिल के पत्तों के

समान पत्त होते हैं। इसम दो-दो तीन-तीन इच की फलियां (pods) निकलती है, जिसमें बीज लाल रंग का गुंजा (abrus) की आकृति में मिलता हुआ रहता है। अत इसे प्रवालफल कहा जाता है। लकड़ी लाल रंग की होने के कारण इसे रक्त चन्दन कहते हैं। यह महागुणी द्रव्य है। किन्तु इस समय जो रक्त चन्दन व्यवहार में लाया जा रहा है यह वह रक्त चन्दन न होकर निगन्ध एवं रक्तवर्ण का एक अन्य काष्ठ है। इसे धन्वन्तरीय निघण्टु ने 'कुचन्दन' कहा है जो राज निघण्टुक पतंग है (देखें पतंग का विवरण, पृ० 70)।

गुण रक्त चन्दन प्रशीतर, कड़वा, भारी, मधुर, नेत्रों को हितकारी, वीर्य वर्द्धक और वमन, तृषा (thirst), रुधिर के रोग, पित्त ज्वर तथा विष, इन सबको नष्ट करने वाला है। रक्त चन्दन स्तम्भक (astringent) है। इसके चूर्ण का प्रलेप स्निग्ध और शिरोवेदनाहर तथा सूजे हुए अंगों की जलन में हितकर है। ग्राही (astringent) होने के कारण यह अन्य ग्राही औषधियों के साथ आमातिसार (diarrhoea), रक्तातिसार (dysentry) में सेवित होता हुआ भी मुख्यतया रक्तवर्ण उत्पादन के लिए औषधियों में भी प्रयोग किया जाता है।

चिरौंजी

(Buchania Latrifolia)

भाषायी नामभेद हि०—चिरौंजी और पियाल, म०—चारोली और चार, गु०—चारोली, क० चारनीज, ते०—साल्पपू, ता०—काटमरा, फा०—नुक्ले खाजा, अ०—हब्बुस्समाना।

संस्कृत नाम प्रियाल खरस्कंध, चार, बहुल वल्कल, राजादन, तापसेष्ट, सन्नकद्रु, धनुष्पट।

विवरण चिरौंजी के पेड़ दक्षिण तथा उत्तर के पर्वतीय प्रांतों में पैदा होते

हैं। काण्ड स्थूल (stout) सीधा और ऊचा होता है, शाखाए चारो तरफ फैली रहती है। पत्ते आठ-दस इच लम्बे और चार पाच इच चौडे होते हैं। पत्तो की गठन कठोर, सुन्दर एव चिकनी होती है। पत्ते आगे से कर्कश तथा पीछे से कोमल। पत्तो की डालिया लम्बी, शाखाओ के शीर्ष भाग मे फूल लगते हैं। पुष्प श्वेत तथा पीले और छोटी आकृति वाले सख्या मे भी अधिक होते है। फल पकने पर काला तथा बीज का आवरण बादाम की तरह कठोर होता है।

गुण चिरौंजी पित्त, कफ तथा रक्त विकारनाशक है। फल मधुर (dulacis), भारी, स्निग्ध, दस्तावर, वातपित्त और दाह, ज्वर तथा तृषा (thirst) को नष्ट करता है। चिरौंजी की गिरी (kernel) मधुर, वीर्यवर्धक, पित्त तथा वातनाशक है। हृदय को प्रिय, स्निग्ध (demulcent) तथा आमवात (rheumatism) वर्धक है। रोग तथा दुबलता म इसे देते हैं। इसका तेल त्वचा के रोग, गजपन (baldness) मे मलते हैं।

जामुन

(Eugenia Jambolana)

भाषायी नामभेद	म०—बडजाम, म०—नदी जाम्भूल, क०—दोहनिरितु, ते०—पेददानेरडि, गु०—जाम्बुन, इ०—Jambo tree
सस्कृत नाम	फलेन्द्रा, नदी, राजजम्बू, महाफला, सुरभिपत्रा, महा जम्बू।

विवरण जामुन के कई भद हैं। गुलाब जामुन, फरेन्द जामुन, कठ जामुन, नदी जामुन आदि। उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा और बिहार म एक प्रकार की उत्तम जाति की जामुन होती है विशेषकर उत्तरप्रदेश तथा बिहार मे जिस फरेन्द कहते हैं। इसके फल कबूतर के अण्डे के बराबर बडे तथा गोल-गोल होते हैं। पकने

पर बैंजनी (violet) रग मे और रसदार होते हैं किन्तु कच्चे रहने पर हरे रहते हैं। पत्ते आम की तरह परन्तु चिकने होते हैं। वसन्त ऋतु के प्रारम्भ में फूल मंजरी (catkin) में समान स्वर्ण वर्ण के होते हैं। ग्रीष्मकाल और वर्षा ऋतु में फल आता है जिसके भीतर गिरी पाई जाती है और इस ही राजजम्बू अथवा बिकने वाले राहजामुन के नाम से पुकारते हैं।

कठजामुन अथवा काकजम्बू के पेड साधारण ऊचाई के झाडदार (bushy) पत्ते छोटे-छोटे कमी ही आकृति के और फल भी छोटे होते हैं। गूदा बहुत कम होता है, बीज ही बीज होते है, और स्वाद में कसैली होती है। साधारणतया इसको नदी जामुन, क्षुद्र जम्बू (गुजराती), क्षुद्रे जामुन (बगाली), अथवा छोटी जामुन कहते है। इस जामुन के पत्ते अथवा फल राज जम्बू की अपेक्षा छोटे होते हैं। यह पेड यू०पी० के जगल प्रदेश की नदियों एव नाला (drains) के किनारे पंक्ति में लगे हुए हैं। नैनीताल से प्रारम्भ होकर जो इसका जगल चलता है वह गोरखपुर तक चला जाता है और बहुत दूर तक फैला है। भूमि जम्बू एक और भेद है इसके पेड झाडियों की तरह तथा फल गोल-गोल मटर की आकृति के छोटे होते हैं। यह भी वन प्रदेश की ही उपज है। यह ग्रीष्म के अन्त में पुष्पित होता है। वर्षा के अन्त में फल आता है।

गुण बडी जामुन अथवा राजजम्बू स्वादिष्ट, भारी ग्राही और रुचिकर है किन्तु छोटी जामुन ग्राही रूक्ष (dry) तथा कफ (phlegm), पित्त, रुधिर विकार और दाहनाशक है। इसके फल में जम्बुलिन अथवा शक्कर पायी जाती है। साथ ही एक सुगंधित तेल, लौह (iron), चर्बी, राल (resin) गैलिक एसिड तथा एल्ब्यूमिन होते है। छाल (bark) में टनिन 12 प्रतिशत तथा एक प्रकार का गोद (kino gum) भी रहता है। पके जामुन का फल रस अथवा शर्बत पाचक (digestive) और पेशाब लाने वाला (diuretic) है। कम पेशाब आने पर इसका सेवन किया जाता है। छाल का क्वाथ (decoction) बच्चों के आम अतिसार (diarrhoea) और रक्तातिसार (dysentry) में देते हैं। मसूढों से रक्त बहना, क्षत (lesion) तथा जीभ फटने में इसके क्वाथ का उपयोग करते हैं। पत्तों का लेप पुराने व्रणों (ulcers) का शोधन करता है। बीज चूर्ण तथा सूखे हुए फल का चूर्ण मधुमेह (diabetes) में विशेष लाभदायक है।

जायफल

(Myristica Officinalis)

भाषायी नामभेद	बं०—जायफल, म०—जायफल, गु०—जायफल, जाईफल, तें०—जाजिकाया, ते०—जोदिक्काय, फा० —जोमोबुवा, अ०—जोजअलतीब, इं०—Nutmeg
संस्कृत नाम	जातिफल, जातिकोश, मालती फल।

विवरण जायफल के पेड़ मलाया, जावा, सुमात्रा, लंका इत्यादि एवं हिन्दमहासागर के द्वीपपुंजों में पाए जाते हैं। इसका काण्ड (trunk) अग्रभाग पर्यन्त सीधा होता है। शाखाएं समतल से थोड़ी थोड़ी दूर पर स्थित रहती हैं तथा भूमि की ओर लटकी हुई बहुत सुंदर दिखाई पड़ती हैं। पत्तों को मसलने पर कुछ सुगंध मालूम पड़ती है। पुष्प बहुत छोटे, निर्गन्ध, पीले तथा संख्या में अत्यधिक होते हैं। इसका फल गोलाकार, मुर्गी के अण्डे के आकार का, चिकना और पीले रंग का होता है। इसके फल में तीन परतें (layers) होती हैं—(1) फलावरण (pericarp), (2) जावित्री (mace) और (3) बीजावरण (testa)।

फलावरण स्थूल (stout) तथा मांसल (thick) होता है जो पक जाने पर पीले रंग का हो जाता है। यह फल को घेरे हुए रहता है तथा इसमें एक सीता (furrow) बनी रहती है। फल के पकने पर सीता चिह्न के फटते ही फलावरण विरक्त हो जाता है।

जावित्री फटने पर देखा जाता है कि पलाश-पुष्प के वर्ण (colour) की मांसल परतें बीजावरण को ढके हुए हैं जो गुच्छा के रूप में उससे चिपटी रहती है। सूख जाने पर भंगुर (brittle) पीले वर्ण की बीजावरण से अलग हो जाती हैं।

बीजावरण जावित्री दलों के चिह्नों से चिह्नित बीजावरण [illegible], सुगंधित तथा गोल होता है। यह कठोर होता है और तोड़ने पर [illegible] जायफल दिखाई देता है। बाजार में जायफल दो प्रकार के [illegible]—एक बीजावरण के साथ और दूसरा बीजावरण रहित। [illegible] होगा उतना ही उत्तम होता है।

गुण जायफल रस कड़वा, तीक्ष्ण, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] बढ़ाने वाला, ग्राही, स्वर को हितकारी, [illegible]

मुख की विरसतानाशक, मल, दुर्गंधता, कृष्णता (cyanosis), कृमि (helminth), खासी, वमन, श्वास(asthma), शोथ (शोथ, सूजन), पीनस (coryza) तथा हृदय रोग को दूर करने वाला है। जायफल और जावित्री दोनों सुगंधित, पाचक तथा उष्ण होते हैं। सेवन करने पर पाचन क्रिया को स्थिर करता, भूख बढाता, उदरवायु, ग्रहणी एवं शूल (colic) को शामक (demulcent) है। अधिक मात्रा में सेवन करने से मूढ़ता (stupor) एवं सज्ञाहीनता (delirium) को उत्पन्न करता है। पाचक, स्तम्भक (astringent) एवं वेदनाहर (anodyne) होने के कारण अतिसार, रक्तातिसार (dysentry), तथा वमन रोगों में प्रयुक्त होता है। अल्प मात्रा में सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र (strongury) तथा रक्त मूत्रता (haematuria) में हितकर है। इसका प्रलेप (paste) शिर पीडा, वातव्याधि एव फालिज (palsy) में किया जाता है। जायफल वृक्ष की लकडी स्तम्भक (astringent) होने की वजह से अतिसार में शान्ति प्रदान करती है। इसका तेल ऊष्ण, वायुनाशक है जो ग्रहणी में अन्य दूसरी उत्तेजक औषधियों के साथ दिया जाता है। अति मात्रा में सेवन से मदकारक (narcotic) होता है। इसे सक्षेप (canary) आदि के तेल के साथ मिलाकर वात व्याधि से उत्पन्न रोगों में सपप किया जाता है। यह तेल उडनशील है तथा साबुन को सुगन्धित करने के लिए जावित्री एव जायफल के तेल काम आते हैं।

जावित्री

(Myristica Fragrans)

भाषायी नामभव — ब०—जैत्री और जयित्री, म०—जायपत्री, गु०—जावत्री, क०—जायपत्री, फा०—जवत्री, अ०—बसिबासा, इ०—Mace

विवरण — जायफल की ही आवरक छाल (rind) को जावित्री कहा जाता

है। यह बीजावरण के ऊपर लगा रहने वाला द्वितीय आवरण है जो गुच्छों मे जायफल बीजावरण के ऊपर चिपका रहता है और कालान्तर मे पककर पीला हो जाता है।

गुण—जावित्री हल्की, मधुर, कडवी, ऊष्ण, रुचिकारक, वर्ण (complexion) को उत्तम करने वाली और कफ, खासी, वमन, श्वास, तृषा, कृमि तथा विष इनको नष्ट करने वाली है। जायफल और जावित्री को किसी अक्षोभक तेल (bland oil) के साथ मिलाकर आमवातव्याधि (rheumatism), पक्षाघात (paralysis), मोच (sprain), गुमचोट (contusions) आदि पर मर्दन किया जाता है।

जिगिनी

(Odina Wodier)

भाषायी नामभेद   बं०—जितल, ते०—गम्पिना, म०—मोर्ड० मोक, गु०—जिगनी मवेडी, क०—आरिश।

संस्कृत नाम   जिगनी, झिगनी, झिंगी, सुनियसा, प्रमोदनी।

विवरण   जिगिनी के पेड जगलो तथा वन्य प्रदेशो म अधिक पाये जाते हैं। ये वृक्ष बहुत बडे तथा ऊचे होते हैं। पत्ते सेमल की तरह चिकने किन्तु पतले होते है। सेमल के पेड से केवल इतना अन्तर है कि इस वृक्ष मे काटे नही होते और पुष्प सफेद होना है। इसका पुष्पकाल ग्रीष्म ऋतु और फल बेर की तरह गोल अथवा लम्बे होत हैं।

गुण   जिगिनी मधुर, उष्ण, कषैली, योनि (vagina) के व्रण शुद्ध करने वाली, चरपरी, नमकीन और व्रण (ulcer), वात, अतिसार तथा हृदय रोगनाशक है। जिगिनी की छाल सकोचक है। मुखरोग मे इससे कुल्ले कराते हैं। इसका

त्वक चूर्ण (balk powder) नीम तेल (margosa) के साथ पुराने व्रण मे हितकर है। इसका गोंद ब्राडी (Brandy) के साथ मिलाकर धृष्ट अथवा पिच्छिट भाग पर लगाने से शीघ्र फलदायक है। दूध को बढाने के लिए स्त्रिया इसके गोंद को बल्य (tonic) समझकर सेवन करती हैं।

तगर

(Veleriana Hardwick)

भाषायी नामभेद	बं०—तगरपादुका, म०—गोडेतगर, गु०—तगर, तै०—गंधितगर पुचेट्टु क०—तगर, नेपाली—चम्पा, अ०—सारून।
संस्कृत नाम	कालानुसार्य, तगर, कुटिल, नहुष, नत। (तगर का एक भेद पिण्डतगर है, इसे दण्डहस्त तथा बर्हिण नामों से पुकारते हैं।)

विवरण यह सुगन्धि जाति का एक वृक्ष होता है। इसकी लकड़ी काले रग की होती है। इसके दो भेद हैं—(1) नन्दीतगर (तगर) और (2) पिण्डी तगर। दोनो गुणो मे समान होते है। इनकी उत्पत्ति प्राय पर्वतीय प्रदेशो मे होती है। इसके वृक्ष बड़े और पत्ते कनेर जैसे लम्बे-लम्बे होते हैं। पाच पखुडिया (petals) वाले पीले रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं। दोनो के रूप और गुण एक ही होते हैं केवल गंधमात्र का अन्तर है। नन्दीतगर अधिक सुगंधित किन्तु पिण्डीतगर सुगंधित नही होता। नन्दी की लकड़ी चिकनी और कोमल होती है किन्तु पिण्ड की रूखी तथा हल्की होती है।

गुण तगर उष्ण, मधुर, स्निग्ध, हल्का और विषरोग (poison) मृगी (epilepsy), शूल (colic), नेत्ररोग तथा वात पित्त-कफ तीनो दोषो को हरने वाली है। यह मस्तिष्क के लिए बलप्रद (tonic) तथा जीर्ण ज्वर (chronic

fever) मे हितकारी है । यह मूत्रल (diuretic) अर्थात पेशाब लाने वाला एव ऋतुस्राव (monthly course) का करने वाला है ।

तमाल
(आबनूस)

भाषायी नामभेद ब०—तमालगाछ, म०—तमाल वृक्ष, गु०—तमाल, ते०—तमालु ।

विवरण तमाल के वृक्ष दक्षिणी समुद्र के किनारे की भूमि, यमुना तथा ताप्ती नदियो के किनारे की भूमि म पाए जाते है। वृक्ष का काण्ड (trunk) जड तथा छाल काले नीले रग के होते हैं। पत्ते शीशम के पत्तो की तरह और गोल तथा फूल लाल-लाल लगते हैं। फल छोटे और करौंदे की तरह होते हैं ।

गुण तमाल शाल की तरह का एक बहुत बडा वृक्ष है जो शरीर की गर्मी और विस्फोट को दूर करने वाला है ।

ताड
(Borassus Flabelli Formis)

भाषायी नामभेद ब०—ताल, म०—ताड, गु०—ताड, ता० – लमेपनम, फा०—नाल, अ०—तार, इ०—Palmyra Palm ।

संस्कृत नाम ताल, लेख्यपत्र, तणराज, महान्नत ।

विवरण ताड के पेड बहुत ऊंचे होते हैं। काण्ड बहुत बडा और कालेरंग की खुरदरी उत्सेध युक्त होती है। इसमे डालिया नही होती। काण्ड से ही पत्ते निकलते हैं। पत्ते लगभग 5 6 फुट लम्बा और 3 से 6इन्च चौडा होता है। पत्ते गोल बहुत बडे और अन्त मे फटे हुए होते है। इसके दो भेद है—(1) नर तथा (2) नारी। नर पेड में केवल पुष्प लगते हैं किन्तु फल नही। नारी वक्ष म फल नारियल (coconut) की तरह गोल सैकड़ो की सख्या मे लगते हैं। इनमे ही प्रारम्भावस्था मे काटकर जो रस चुवाया जाता है उसे ताडी कहते हैं।

गुण ताड का पका फल पित्त, रक्त तथा कफवधक, मूत्रल (diuretic), तन्द्रा (drowsiness) और वीर्यप्रद है। नए ताड की मीग (ताड गूदा) किंचित मदकारी (intoxicating) हल्का, कफकारक, वात और पित्तनाशक, स्निग्ध (demulcent), मधुर (dulacis) तथा दस्तावर (purgative) है। ताड का ताजा रस (ताडी) प्रशीतक (refrigerant) और पेशाब लाने वाला है किन्तु बासी ताडी सुजाक (gonorrhoea) म पेशाब लाने के लिए पीते हैं। ताडी ताजी रहने पर अत्यन्त मदकारी है किन्तु यदि देर तक रखने पर खट्टी हो जाव तो पित्त करने वाली और वातनाशक (carminative) है। ताड की कच्ची फली का गुदा (pulp) मूत्रकर, प्रशीतक, पोषक (nutrient) सुजाक तथा प्रदर (leucorrhoea) म सेवन किया जाता है। ताड की जड शीतल एव बलप्रद है। ताड की राख (ash) प्लीहा (spleen) मे देते हैं।

तालीस-पत्र

(Abies Webbiana lindl)

भाषायी नामभेद	बं०—तालीशपत्र, म०—लघुतालीसपत्र, गु०—तालीस पत्र, क०—तालीसपत्र, ते०—तालीसपत्री, फा०—जरनब, अ०—तालीसफर।
सस्कृत नाम	तालीस, पत्राढ्य, धात्रीपत्र, आमलकीपत्र, शुकोदर, वनच्छद आदि।

विवरण तालीसपत्र के पेड बहुत बडे तथा ऊंचे होते हैं। यह अपनी

हरियाली के कारण चिरहरित (ever green) नामा से परिचित है। हमेशा इसके पत्ते हरे रहते हैं और गिरते नहीं, अत 'पत्राद्य' नाम रखा है। पजाब प्रात मे सिंधु नदी के तटीय भू भागो से लेकर भूटान के विस्तृत प्रदेश तक तथा हिमालय के कुछ प्रदेशो मे इसके पेड अधिकता से पाए जाते हैं। झेलम नदी के किनारे पर बसने वाले तालीस-पत्र को इकट्ठा करके अपने पशुओं को खिलाने में प्रयोग करते हैं। इसके पत्ते शाखा के चारो ओर फैले रहते हैं। पत्ता वृन्त (brancnlet) से लेकर ऊपरी भाग तक एक लम्बी रेखाकृति पक्ति द्वारा विभक्त रहता है। पत्रोदर (leaf face) चिकना होता है मानो पालिश किया हुआ हो। पत्रोदर उज्ज्वल होते हैं और इन पर गाजे (indianhemp) के बीज की तरह बीज लगे रहते है। स्वाद अत्यन्त कडवा होता है।

गुण तालीस-पत्र हल्का, तीक्ष्ण, उष्ण (stimulent) और श्वास, खासी, कफ, वात, अरुचि (nausea), गुल्म (tumour), अग्निमाद्य (dyspepsia) तथा क्षयरोगो (तपेदिक) को हरने वाला है। यह तालीसादि चूर्ण एव लवण भास्कर चूर्ण म प्रयोग किया जाता है। तालीस-पत्र आक्षेप निवारक (antispasmodic) है। यह श्वास (asthma), रक्त पित्त (haemaptysis), मिर्गी (epilepsy) तथा आक्षेपमूलक (spasmodic affection) पीडाओ म प्रयोग किया जाता है।





तिनिश

(Qugeinia Dalbargia Oides)

भाषायी नामभेद बं०—तिनाश, म०—तिवस, गु०—हर्म्या
सस्कृत नाम तिनिश, स्यदन, नमि, रथद्रु, वजुल।

विवरण इनके पेड बडे-बडे होते हैं। आकृति ठीक बबूल से मिलती अथवा खैर से मिलती-जुलती है।

गुण तिनिश कपला और कफपित्त, रुधिरविकार, कुष्ठ (Leprosy), प्रमेह (sugar), श्वेत कुष्ठ, दाह, व्रण, पाण्डु (paller) तथा कृमिनाशक है।

तुन

(Meliaceae)

भाषायी नामभेद — व०—तुदवक्ष, म०—तूनी, नादुरस्वी और नादरूख, गु०—तुणी ।

संस्कृत नाम — तूणी, तुन्नक, आपीन, तुणिक, कच्छक, कुठरक, कातलक, नदी वक्ष तथा नन्दक आदि ।

विवरण तुन के पेड बहुत बडे बडे होते हैं । पत्ते नीम के पत्तो स मिलते जुलते किन्तु बडे होते हैं । फूल छोटे और गुच्छो मे भुमकेदार सफेद रंग के आते है । बीज भी नीम की तरह झुमकेदार होते है । पकने पर छिलके पाच भागो मे विभक्त हो जाते हैं । बीज पतले-पतले कोणाकार तथा भीतर का भाग पाच ऊची मीनारो म विभक्त होता है । लकडी उत्तम और रग से लाल तथा हल्की होती है ।

गुण तुन लाल, चरपरा, खाने मे कपला, मधुर, हल्का, कडवा, ग्राही, प्रशीतक (refrigerant), वीर्यवर्धक और व्रण (ulcer), कुष्ठ (leprosy) तथा रक्तपित्तनाशक है ।

तेजपात

(Sinnamonum Tamala)

भाषायी नामभेद — व०—तेजपत्र और तेजपाता, म०—तमालपत्र और मम्भारपान गु०—तमालपत्र, क०—पत्रक ते०—आकुपत्री, फा०—सादरसु अ०—साज़िज, इ०—Folia Mala bathyc

संस्कृत नाम — पत्र, पत्रवाचक ।

विवरण तेजपात के पेड उत्तरी भारत म होते हैं । पत्ते लम्बे लम्बे तेज मे

पत्ता के समान और इनमें रेखाएं (veins) उभरी सी दिखाई पड़ती हैं। पत्ता में एक उत्तम प्रकार की सुगंध निकलती है। तेजपात पश्चिमी प्रदेशों में भी बहुतायत से होता है। पथरीली भूमि जिसमें चूने (lime) तथा कार्बन का भाग अधिक हो, इसके लिए उपयोगी है। यों तो हर जगह इसके पेड़ लगाए जा सकते हैं किंतु उनमें उतनी सुगंधी एवं तीक्ष्णता (pungency) नहीं पायी जाती जितनी पर्वतीय प्रान्त में उत्पादित तेजपात में पायी जाती है।

गुण : तेजपात मधुर (dulacis), किंचित् तीक्ष्ण, उष्ण पिच्छिल, हल्का और कफनाशक, बवासीर (piles), हृदय रोग, अरुचि तथा पीनस (सर्दी के कारण नाक से पानी बहना) आदि सब रोगों को दूर करने वाला है।

दालचीनी

(Cinnamon Cartex)

भाषायी नामभेद	बं०—दारचीनी, म०—दालचीनी, गु—पातली तज, ते०—डालचीनी, फा०—दारचीनी, अ०—सालीखा, इं०—Cinnamon bark
संस्कृत नाम	त्वक्, चोची, तनुत्वक्, दारसिता आदि।

विवरण : दालचीनी के पेड़ श्रीलंका, मालाबार, कोचीन, चीन, सुमात्रा, जावा इत्यादि स्थानों पर अधिकता से पैदा होते हैं। इसके पत्ते तमाल पत्र की तरह होते हैं। वृक्ष के अगले भाग पर स्थित वृन्त पर सफेद रंग के फूल आते हैं। फूलों में गुलाब की तरह सुगंध निकलती है। फल करौंदे की तरह कुछ सफेद तथा लाल होते हैं जिनमें से तेल निकलता है। इसके फूल का अर्क (decoction) और सत्व (extract) निकालते हैं। श्रीलंका की दालचीनी बहुत प्रसिद्ध है। इस वृक्ष की पतली त्वचा ही दालचीनी कहलाती है। इसी जाति के पेड़ जो बड़े होते हैं तथा जिनकी छाल मोटी होती है उन्हें 'तज' कहा जाता है। यह उतनी सुगंधित नहीं होती जितनी दालचीनी और साथ ही गुणों में भी कम होती है।

गुण दालचीनी मधुर, कड़वी, चरपरी, सुगंधित, वीर्यवर्धक, वर्ण(complexion) को साफ करने वाली और वातपित्त, मुख का शोथ (stomatitis) तथा प्यास को दूर करने वाली है। इसमे एक उड़नशील सुगंधित तेल 2 प्रतिशत, सिनैमिक एसिड, राल, (resin), टैनिन, शर्करा (sugar), स्टार्च, म्युसिलेज (mucilage) तथा राख (ash) के भाग रहते हैं। दालचीनी वायुनाशक, आक्षेप हर (antispasmodic), सुगंधित, उष्ण (germicide) स्तम्भक (astringent) तथा रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु की नाशक (germicide) है। यह अन्य दूसरी औषधियो के साथ दी जाती है। इसका तेल स्तम्भकहीन है। यह रक्तधर वाहिनी (vascular) एवं नाड़ियो मे उत्तेजना पैदा करती है। अधिक मात्रा मे सेवन करने से यह विषवत (narcotic poision) कार्य करती है। औषधीय मात्रा मे सेवन करने पर यह उदरवायु, जीभ का फालिज, आन्त्रशूल (enteralgia), पेट मे ऐंठन (cramp) तथा मितली एवं वमन बन्द करने के लिए उत्तम औषधि है। ऐंटीसेप्टिक होने के कारण सुजाक (gonorrhoea) मे दालचीनी का इंजेक्शन देते हैं। रोगनाशक (germicide) की तरह यह आन्त्र ज्वर (typhoid) मे उपयोग की जाती है। दालचीनी रक्तरोधक (haemostatic) है और गर्भाशय (uterus) पर विशेष क्रिया करती है। गर्भाशय से रक्तस्राव होने पर दालचीनी अधिक हितकर है। राजयक्ष्मा (phthisis) मे सिनैमिक एसिड का इंजेक्शन दिया जाता है। इसकी छाल को गेरू (red chalk) के साथ मिलाकर हाथ और पैरो के हर वक्त रहने वाले शोथ (dropsy) पर लेप करते है।

देवदारु

(Cedrus Deodara)

भाषायी नामभेद	बं०—देवदारु, म०—तेल्या देवदार, गु०—देवदार, ते०—देवदार चेक्का, फा०—देवदार, अ०—शजर तुलजीन, इं०—Cedar
संस्कृत नाम	देवदारु, दारु, भद्रदारु, इन्द्रदारू, मस्तदारु, द्रुकिलिय, किलिय, सुरभूरुह।

विवरण देवदारु के पेड बडे तथा ऊचे होत है। इसके काण्ड (trunk) 15 16 फुट ऊचे तथा व्यास (diameter) चार फुट तक पाया जाता है। काण्ड सीधे, जड मे मोट तथा ऊपर को क्रमश पतले होते जाते है। इसकी शाखाए पृथ्वी की तरफ झुकी रहती हैं, पत्ते लम्बे और कुछ गोलाई लिए होते हैं। फूल एरण्ड की तरह गुच्छा म लगत है। इसके तख्ते (planks) इमारती वस्तुए (किवाड, खिडकिया, कडिया आदि) बनाने म उपयोगी हैं। जिस घर मे इस लकडी का प्रयोग होता है वह सुगंधित रहा करता है। यह अपनी सुगन्धि के लिए चिरपरिचित है। इसके दो भेद हैं—एक स्निग्ध, दूसरा काष्ठ। स्निग्ध देवदार चिकना और सुगन्धित होता है किन्तु काष्ठ देवदार के पत्ता स उत्सव इत्यादि के समय वदनवार बाधते है। धूप के नाम से प्रसिद्ध जो चिकनी, तैल-युक्त (oily) लकडी बाजार मे मिलती है वही स्निग्ध देवदारु है। इसके वन बहुत बडे-बडे देखे जाते हैं। स्निग्ध देवदारु पर्वतीय प्रांतो म तथा काष्ठदारु यत्र तत्र-सर्वत्र होता है।

गुण देवदारु हल्का, स्निग्ध (demulcent), कडवा, उष्ण, पाक मे चरपरा, अफारा (flatulence), सूजन (inflammation), आमवात (rheu matism), तन्द्रा (drowsiness), हिचकी (hiccup), ज्वर, रुधिरविकार, प्रमेह, पीनस, कफ, खासी खुजली तथा वातनाशक है। देवदारु की लकडी वायुनाशक, स्वेदक (पसीना लाने वाली) एव मूत्रल (पेशाब लाने वाली) है। यह ज्वर, उदरवायु, शोथ (dropsy), अश्मरी (strangury) इत्यादि मूत्रपथ (पथरी) सम्बन्धी पीडाओ (pains) म सेवन की जाती है। देवदारु का क्वाथ सुजाक (gonorrhoea), फिरग (syphilis), वात (gout) एव आमवात म शक्तिशाली रसायन (alterative) रूप म सेवन किया जाता है। हल्दी (turmaric) और गुग्गुल (Indian Delium) के साथ इसका प्रलेप वेदनाहीन शोथयुक्त (indolent swellings) अगो पर लगाया जाता है। इसका तेल पुराने चम रोगो तथा अधिक मात्रा म कुष्ठ (leprosy) मे सेवन किया जाता है। व्रणो पर भी इसका प्रलेप किया जाता है।

धूपसरल
(Pinus Longifolia)

भाषायी नामभेद	बं०—सरलगाछ और सरलकाष्ठ, म०—सरल देवदार, गु०—पीलो बरजा, क०—सरली देवदार विशेष, इं०—Longleaved Pine
संस्कृत नाम	सरल, पीतवृक्ष, सुरभि दारुक।

विवरण यह पर्वतीय स्थानों में होने वाला स्थायी (बहुवर्षी) वनस्पति है। पत्ते पलाश के पत्तों की तरह गोलाई लिए होते हैं। फूल निर्गन्ध तथा सफेद होते हैं। चन्दन की तरह इसकी लकड़ी में सुगन्ध और भीतर से रंग पीला होता है। इसे किन्ही स्थानों पर धूप अथवा हल्दू के नाम से जाना जाता है। यह भी देवदारु की ही एक किस्म है। इसमें गोंद की तरह एक वस्तु निकलती है जो अवलकतर (tar) की किस्म की है। अलकतर (गिरोजा) के अभाव में इसे काम में लाते हैं। अल्मोड़ा, नैनीताल में इसके बागात हैं। नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्रों में भी इसके अनेक पेड़ हैं।

गुण धूपसरल मधुर, कड़वी, चबाने में चरपरी, हल्की, स्निग्ध, उष्ण और कान के रोग गले तथा नेत्र के रोग, कफ, वात, पसीना, जलन (burning), खांसी, मूर्च्छा और व्रणा के लिए हितकारी है। इसकी लकड़ी सुगंधित, वायुनाशक (carminative) स्वेदकारी (diaphoretic) और मूत्रल (diuretic) है। यह जलन वाली सूजन, ज्वर, शोथ (dropsy), अफारा एवं मूत्र रोगों (cystistis) में अन्य औषधियों के साथ क्वाथ रूप में दी जाती है।

नागकेशर
(Masuaferia)

भाषायी नामभेद	बं०—नागेश्वर, म०—नागकेशर, गु०—नागकेशर, क०—नागकेशर, ते०—नागकेशरालु ता०—नोगल, अ०—नारमुश्क इं०—Saffron

संस्कृत नाम   नागपुष्प, नागकेशर, चाम्पेय, नागकिंजल्क, कांचन एवं स्वर्ण के सभी पर्यायवाची नाम आदि।

विवरण   नागकेशर के वृक्ष बहुत बड़े होते हैं। यह उद्यानों में यत्नपूर्वक लगाये जाते हैं। कूचबिहार में इसके पेड़ बहुत अधिक पाए जाते हैं। इसके पत्ते लम्बे और अग्रभाग में पतले होते हैं। पत्ते की सतह पर वर्फ जैसी सफेद रंग की एक परत रहती है जो छूने से हाथों में लग जाती है। पत्रोदर हरे रंग का होता है। फाल्गुन मास के अन्त अथवा चैत्र मास के आरम्भ में यह पुष्पित होता है। इसके फूलों में केशर (Saffron) बहुत होता है जो बहुत सुन्दरता से पुष्प में लगा रहता है। नागकेशर के फूलों के दल सफेद रंग के और देखने में बिल्कुल बड़े तगर के फूलों के समान होते हैं। दल एक साथ मिले नहीं होते बल्कि वे पुष्पकुण्ड के दोनों तरफ फाक फाक चार असमान दलों में रहते हैं। दुकानों पर जो बड़े-बड़े लाल रंग के पदार्थ उपलब्ध हैं वे नागकेशर नहीं हैं। नागकेशर ही फूल के कुण्ड को कहते हैं। इसकी गन्ध सुहावनी एवं सुगन्धित होती है। फल बड़े होते हैं। फल से एक प्रकार का निर्यास (resinous) बाहर निकलता है।

गुण   नागकेशर कषैला, उष्ण, रूखा (barbaric), हल्का, आम को पचाने वाला और ज्वर, खुजली, प्यास, पसीना, वमन, दुर्गन्ध, कुष्ठ, विसर्प, कफ-पित्त तथा विष को दूर कराता है। नागकेशर का फल एक राल मिश्रित सुगन्धित तेल तथा इसका बीज एक स्थिर तेल वाला होता है। इसके कठोर फलावरण (pericarp) में टैनिन रहता है। इसका राल (resin) आंसुओं की तरह बहकर निकलता है और जल में भारी होने के कारण डूब जाता है। यह रेक्टीफाइड स्प्रिट, अल्कोहल तथा ईथर में घुलनशील है। इसका सुगन्धित तेल हल्के पीले रंग का तथा सुगन्ध तारपीन तेल से मिलती-जुलती होती है। नागकेशर की शुष्क कली, जड़ और छाल कड़वी, सुगन्धित एवं पसीना लाने वाली हैं। बिना पका फल कड़वा, उष्ण तथा विरेचक (cathartic) है। कली और फूल रक्तातिसार (dysentry) में दिए जाते हैं। इसका तेल सन्धिवात (gout) में मर्दन किया जाता है। नागकेशर के पुष्प चूर्ण का मक्खन के साथ मरहम बनाकर रक्तार्श (bleeding piles) तथा पैरों के तलुओं की जलन में लगाते हैं।

नारियल

(Cocos nucifera)

भाषायी नामभेद — बं०—नारिकेल और नारकोल, म०—नारली और नारल, गु०—नालीएर, ते०—टेंकोचा और नारिकदम ता०—टन्ना और टेंगा, फा०—जोज, अ०—नारजिल, इं०—Coconut palm

संस्कृत नाम — नारिकेल, दढफल, लागली, कूचशीपक, तुग, स्कध फल, तृणराज, सदाफल।

विवरण यह लवणीय (नमक वाली) भूमि मे बहुत पैदा होता है और यही कारण है कि समुद्र के किनारो पर या उसके आस पास के क्षेत्रो म अत्यधिक पाया जाता है। सात आठ वष से पूव यह फल नही देता। इसमे डालिया नही होती। सीधा काण्ड होता है जिसमे दीघवन्त निकलकर पत्ते निकलते हैं। इन पत्तो के बीच की दूरी मे झौंपदार एव पीले रग के सुदर फूल निकलते है। फल गोल गोल अन्त मे लगते है। वसत तथा ग्रीष्म ऋतु मे पुष्पित होने के बाद वर्षा ऋतु मे फल आता है।

फलो के ऊपर से जटाए (आवरण) हटाने पर एक कठोर भाग मनुष्य-खोपडी (skull) की आकृति का निकलता है जिसे तोडने पर भीतर सफेद रग का गोला (coconut) मिलता है। इसमे पानी भी भरा रहता है। नारियल कई किस्म का होता है और मुख्य भेद डाभ अथवा झूना है। यह बगाल मे बहुत प्रिय समझे जाते हैं। इसकी विशेष उपज बवई, बगाल, गोआ, केरल तथा मद्रास मे होती है।

गुण नारियल का फल (गोला गिरी) प्रशीतक, देर से पचने वाला, मूत्राशय (urinary bladder) को साफ करने वाला, ग्राही, पुष्टिकारक, बलदायक, और वात पित्त, रक्तविकार तथा दाह (जलन)नाशक है। कच्चे फल विशेषकर पित्त ज्वर तथा पित्तविकारनाशक है। पुराना फल भारी, पित्तकारक विदाही[1] तथा हृल को रोकने वाला है। नारियल का पानी शीतल, हृदय को प्रिय भूख बढाने वाला, वीयवधक, हल्का, प्यास तथा पित्त को नष्ट करन वाला, मधुर (dulacis) और मूत्राशय को परम शुद्ध करने वाला है। अधिक मात्रा मे

---

1 जो द्रव्य भोजन करने के बाद खट्टा डकारें (belchings) प्यास एव छाती म जलन पैदा करे और देर स पच, उस विदाही कहते हैं।

सेवन से रेचक (cathartic) का काय करता है। नारियल का तेल 'काडलिवर आयल' के बदले मे शारीरिक कमजोरी म दिया जाता है। यह देर से पचता है। ज्वर तथा खासी मे इसके तेल की मालिश की जाती है। इसके प्रयोग से केश समय से पूव नही पकते और ना ही सफेद होते हैं। यह केशरक्षक, केशवधक, और अनेक चमरोगो मे हितकर है। अग्नि से जले पर प्रयोग करने से जलन शात हो जाती है। *नारियल की जडें अधिक पेशाब लाती हैं। नारियल का दूध तथा* काले जीरे का लेप लू (sunstroke) लगे शरीर को शान्ति देता है। नारियल का दूध प्रशीतक (refrigerant), पुष्टिप्रद, किंचित रेचक, मूत्रल (diuretic) और कृमिनाशक है। नारियल की गिरी लड्डू तथा अन्य मिष्टान्नो म बहुत प्रयोग की जाती है। विशेष सेवन करने पर आता (intestines) म उत्पन्न फीता-कृमि को नष्ट करता है।

निम्ब

(Melia Azadirachta)

भाषायी नामभेद	ब०—निमगाछ और निम्ब, म०—कडनिम्ब, गु०—लिम्बडो, क०—बेडवेवु ते०—वेपुय मरम, फा०—दरख्तहक और नेनबनीम इ०—Nimb tree
सस्कृत नाम	निम्ब, पिचुमद, पिचुमद, तिक्तक, अरिष्ट, पारिभद्र, हिंगुनिर्यास।

विवरण साधारणतया यह 'नीम' के नाम से अधिक जाना जाता है। नीम के पेड बहुत बडे और ऊचे होते हैं। पत्ते कगूरेदार (अनीदार) तथा नोक कुछ मुडी हुई और दो तीन इच लम्बे नेत्राकृति के होते हैं। वसत ऋतु (spring) के प्रारम्भ म पत्ते और पत्रवृन्त (सीकें) सब झड जाते है। तत्पश्चात नए लाल रग के कोमल पत्ते निकल आते हैं। पत्रवन्त (सीक) छ से दस इच तक लम्बे और इनमे पत्ता के जोड 6 से 11 तक लगे होते हैं। काण्ड (trunk) की छाल खुरदरी एव कृष्णाभ (blackish) वण की होती है। छोटी शाखाए भी गहरे बादामी रग की रहा करती है। बसन्त के अत मे सफेद रग के फूल निकल आते

हैं। सुगन्ध चमेली की तरह आती है। फलो के बाद फल झाब्दार लगते हैं जो हरे कोमल, लम्बे, पतले और गोल होते हैं। बढ जाने के बाद इनका आकार ठीक खिरनी के फलो से मिलता-जुलता है। इन्हे नीम के फल अथवा निबौली कहते हैं। पकने पर इनका रग पीला हो जाता है। इनके भीतर बीज (kernel) निकलते हैं जिनमे तेल होता है।

गुण नीम प्रशीतक, हल्का, ग्राही, खाने मे चरपरा, हृदय को अप्रिय और अग्नि, वात, परिश्रम, प्यास, ज्वर, अरुचि, कृमि (helminth), व्रण, पित्त, कफ, वमन, कुष्ठ तथा प्रमेह को नष्ट करता है। नीम के पत्ते नेत्रो को हितकारी वातकारक, खाने मे चरपरे, सब प्रकार की अरुचि (nausea), कुष्ठ, कृमि, पित्त तथा विषनाशक है। नीम के फल कडवे, खाने मे चरपरे, मलभेदक, स्निग्ध, हल्के, उष्ण और कुष्ठ, गुल्म (tumour), बवासीर (piles), कृमि तथा प्रमेह को नष्ट करने वाले हैं। नीम का तेल (margosa) कडवा, कृमिनाशक और उष्ण है। यह कुष्ठ, कृमि तथा प्रमेह मे प्रयोग किया जाता है। नीम-तेल अन्य तेलो के साथ चमरोग (skin disease), यकृत (liver), गलित कुष्ठ (leprous ulcers) गण्डमाला (scrofulla), व्रण (ulcer) पर उपयोग किया जाता है। इसका मलना वात (rheumatism) और शिरोरोग के लिए लाभदायक है। नीम-तेल मे गधक का अश होने के कारण यह राख के साथ चमरोग मे हितकर है।

नीम की छाल (bark) और पत्ते कडवे होते हैं तथा बलकारक, कषाय (astringent), ज्वरनिवारक (antiperiodic), विषमज्वर (intermittent) शीतज्वर (ague) के लिए हितकर है। साधारण कमजोरी (debility) एव ज्वर के कारण उत्पन्न कमजोरी से पुन स्वास्थ्य पाने (convalescence) मे हितकारी है। गुल्म (tumour) अथवा वेदनारहित सूजी हुई ग्रन्थि (indolent glands) अथवा सूजन (swellings) पर नीम के पत्तो का प्रलेप (Paste) अन्यथा अखण्ड पत्ते बाधने से फोन दब कर नष्ट हो जाते हैं। छोटे नीम के पौधो मे एक प्रकार की शर्बत मिली toddy मदिरा पायी जाती है। इसका सिरका, पाचक कृमिहर (anthelmintic) तथा पाण्डुरोग (pallor) मे लाभप्रद है। नीम के हरे छोटे बीज (कच्चे) फोडो (boils), विसर्प (eruptions), नाडी-व्रण (opensones) मे प्रलेप के लिए उपयोग किए जाते हैं। अधिकतर यह केश धोने और उनमे उत्पन्न जूए (lice) मारने तथा कुत्तो के चमरोगो मे प्रयोग किया जाता है। इससे तयार पच निम्ब चूर्ण बलकारक एव ज्वर आदि से उत्पन्न कमजोरी मे हितकर है। निबौली एक राल-युक्त तेल (नीम-तेल) से भरी रहती है। इसकी छाल गोंद युक्त कडवे पदार्थ मार्गोसाइन (Margosine), अम्रिस्ट लीय, क्षार रहित पदार्थ, गोंद, शकरा तथा टैनिन इत्यादि पदार्थों द्वारा बनी है।

निर्मली

(Strychnos Potetorum)

भाषायी नामभेद ब०—निमल फल, म०—निवलीचया बीया और चिल्हार, गु०—*निमली*, क०—*चिल्लिकायि*, इ०— A nut with clear water

संस्कृत नाम कतक, पय प्रसादी (जल स्वच्छ करने वाला)।

विवरण निमली के वृक्ष दक्षिण भारत (मद्रास) तथा श्रीलंका की भूमि में पैदा होते हैं। इसका पेड़ कुचला की अपेक्षा ऊंचा होता है। पीले रंग के फूल, पका हुआ फल काला होता है। उसके फल को ही निमली (कतक) कहते हैं। बीज गोल कुछ चपटे और बीच से उभरे हुए तथा सफेद होते हैं। बीजो मे कोई स्वाद नही होता।

गुण निमली फल नेत्रो को हितकारी, जल निमल करने वाला, वात (Gout) तथा कफनाशक, प्रशीतक (refrigerant), मधुर, कसैला और भारी होता है। यह रसायन (elixir), बल्य (tonic), पाचक और प्रशीतक है। इसके बीज का पत्थर पर घिसकर मधु (honey) के साथ नेत्रो मे लगाने से आख निमल होकर पानी गिरना बद हो जाता है। पेट पर लेप करने से उदरशूल (colic) नष्ट होता है। इसका शीत कषाय, सुजाक (gonorrhoea) तथा प्रदर (leucorrhoea) मे हितकारक है। यह कफ रोगो मे वमनकारक (emetic) के रूप मे दिया जाता है।

पतंग

(Caesalpinea Sappan)

भाषायी नामभेद ब०—बकमकाष्ठ, क०—पतग, म०—पतग, ते०—औक्नुकट्टु, ता०—घटठगी, फा०—बकम, अ०—बकम, इ०—Sappan wood

संस्कृत नाम पतंग, रक्तसार, सुरंग, रजन, पत्तूर, कुचदन।

विवरण पतग के वृक्ष बडे-बडे चदन की ही तरह होते हैं। इसमे और रक्त चदन के पड मे बहुत समानता है। इसका भी लकडी का सारभाग लाल रहता है। लाल रग इससे बनाया जाता है। कपडे इत्यादि रगने के लिए भी यह काम आता है। इसी कारण इसको 'रजन' कहा है। लकडी अधिकतर लाल रग की गठीली (knotty) होती है और उसे ही पतग कहते हैं। रग चढाने वाले अधिकतर इसको प्रयोग मे लाते हैं। रक्त चदन सुगधित (aromatic) होता है किन्तु यह वृक्ष निगध, केवल यही अतर है। आजकल रक्तचदन के नाम से जो लकडी उपलब्ध है वह यही पतग है।

गुण पतग मधुर, शीतल (refrigerant) एव पित्त कफ तथा रुधिरविकार नाशक है। इसमे पीले चदन के से ही गुण हैं और विशेषकर दाहनाशक है। सब प्रकार के चदन परीक्षण मे एक समान ही हैं, केवल गध मे विशेषता है। अतएव पहले वाले चदन गुण मे श्रेष्ठ हैं, उनमे भी श्वेत चदन गुणो मे सर्वोत्तम है। इसका सूक्ष्म चूर्ण (fine powder) पुराने व्रणो (ulcers) के ऊपर अवचूर्णन करने स उसे फायदा पहुचता है एव व्रणो से बहते हुए रक्तप्रवाह को रोकना है। भीतरी प्रयोगो म यह क्वाथ (decoction) की तरह काम मे लाया जाता है। यह उत्तेजक (stimulant), बल्य (tonic) तथा रक्तशुद्धि (blood purify) करने वाला है।

पद्माख
(Prunus Pudum)

भाषायी नामभेद — ब०—पदमकाष्ठ, म०—पदमकाष्ठ गु०—पदमक, क०—पदमक, ते०—पदमपुवेक्का।
संस्कृत नाम — पदमक, पदमगंध, पदमवाचक।

विवरण किन्ही किन्ही स्थानो पर इसका उच्चारण पदमाक भी है। पदमकाष्ठ के पेड बहुत बडे तथा ऊचे होते हैं। यह पर्वतीय भूमि मे अधिक पाया जाता है। पत्ते चौडे-चौडे रोमदार (hairy) रक्ष लकुच के पत्तो की तरह होते हैं। फूल कदम्ब फूलो के समान हैं किन्तु छोटे होते हैं। इसके पुष्प लगकर ही

गिर जाते हैं अत फल नही पाए जाते। फूलो से कमल जैसी सुगध आती है। काष्ठ (wood) मे कोई स्पष्ट गध नही होती। उत्तर प्रदेश मे वणिक् एक प्रकार की लकडी को पदमाख कहकर बेचते हैं। यद्यपि पदमकाष्ठ की लकडी तथा बाजार मे उपलब्ध लकडी मे समानता बहुत है फिर भी यह वह पदमाख नही है। लकडी मे बीच-बीच मे भोजपत्र (Jacquemon tree) की तरह गाठें उठी रहनी चाहिए तथा सुगध भी रहना उचित है।

गुण पदमाख कषला, कडवा, शीतल, वातकारक, हल्का, गर्भ की रक्षा करने वाला रुचिवर्धक, और कुष्ठ (leprosy), कफ (catarrh), रक्त पित्त, वमन (vomiting), प्यास तथा व्रण (ulcer) के लिए हितकारी है। चरक तथा सुश्रुत के मतानुसार यह गर्भस्थापक है। यहा तक कि जिन स्त्रियो को गर्भस्राव की आशका रहती है, उन्हे इसे (पद्माख) पानी मे घिसकर गर्भ स्थिर रहने के लिए देते हैं। पदमाख की छाल तिक्त, बलकारक और अवसादकर (sedative) किसी लम्बी अवधि की बीमारी के बाद जो कमजोरी होती है उसके प्रतिकार के लिए तथा हृत्स्पन्दन (heart palpitation) मे भी इसे देते हैं।

पपरिया कत्था

(Mimosa Soma)

भाषायी नामभेद	ब०—पापरी खयेरगाछ, म०—पाढराखैर, गु०—खैर धोला सारवालो, क०—बिलीपर्ति, ते०—रवासुतेल्लचण्ड, इ० Catechu
संस्कृत नाम	खदिर, श्वेतसार, कदर, सोमवल्कल, सोमवल्क आदि।

विवरण इसके वृक्ष खैर के समान हैं। खैर के काण्ड (trunk), छाल (rind) काले किन्तु इसके सफेद होते हैं। खैर का बनाया हुआ कत्था काला परन्तु इसका सफेद तथा पपडीदार होता है। दोनो मे यही अन्तर है, शेष सब बातें मिलती-जुलती हैं।

गुण सफेद खैर स्वच्छ, वर्ण (complexion) को उत्तम करने वाला और मुखरोग, कफ तथा रक्तविकारनाशक है।

पलाश

(Butea Frondosa)

भाषायी नामभेद	बं०—पलाशगाछ, म०—पलस, गु०—खाखदो, क०—मुत्तुग, ते०—मोदुग चेटटु, ता०—परशन।
संस्कृत नाम	पलाश, किंशुक, पर्ण, यज्ञिय, रक्तपुष्पक, क्षार श्रेष्ठ, वात हर, ब्रह्मवृक्ष, समिद्वर आदि।

विवरण पलाश (ढाक) को ग्रामीण भाषा मे टेसू भी कहते हैं। इसके वृक्ष बहुत ऊंचे नही होते। क्षारमिश्रित भूमि (रेह या बालुकामय), ऊसर भूमि मे ऊंचे स्थानो पर पलाश बहुत पाए जाते है। आज़मगढ, गोरखपुर इत्यादि स्थानो मे इसके जगल के जगल लगे हुए हैं। उत्तरी भारत के सभी प्रान्तो, मध्य प्रदेश मे भी बहुत पैदा होता है। पलाश की एक टहनी मे तीन पत्ते होते हैं। साधारण टहनी बहुत बडी होती है। बीच का पत्ता अन्य दो किनारे वाले पत्तो से अपेक्षा कृत बडा होता है। पत्ते बडे अण्डवृत्त (oval) गोलाकार, पत्रोदर चिकना, पीछे से पत्ता खुरदरा होता है। वर्षा के प्रथम दिन पानी पडने पर ही पलाश पर पत्ते आ जाते हैं। बसन्त ऋतु मे पुष्पित होता है और इस समय पेड पर पत्ते नही होते। पुष्प व्याघ्र (tiger) के नाखून की तरह टेढा, रग, लाल, पीला, सफेद एव नीला चार तरह का होता है। पुष्प सीधा ही डाल पर लगता है और फली घने कोमल रोम (hair) स पूर्ण होती है। फली के अगले भाग मे पतले आवरण से ढका एक फल रहा करता है। पुष्प वस्त्र रगने और पत्ते बीडी बनाने के काम आते हैं।

गुण पलाश भूख बढाने वाला, वीर्यवर्धक, दस्तावर, उष्ण, कपला, चरपरा, कटवा, स्निग्ध टूटे को जोडने वाला और व्रण (ulcer), गुल्म (tumour), गुदा (anus) के रोग दोष, सग्रहणी बवासीर तथा कृमिनाशक है। ढाक के फूल स्वादिष्ट, खाने मे चरपरे, कडवे, कषैले, वातकारक, ग्राही, प्रशीतक, और कफपित्त, रुधिरविकार, मूत्रकृच्छ (strangury) प्यास जलन, वातरक्त तथा कुष्ठ (leprosy) को नष्ट करता है। पलाश के फल हल्के, उष्ण, खाने मे चरपरे, रुक्ष (dry) और प्रमेह, बवासीर, कृमि, वात, कफ, कुष्ठ, गुल्म (tumour) तथा उदरपीडा (stomachache) नाशक है। पलाश का पत्ता कषाय (astringent) तथा रसायन (elixir) है। यह अतिसार यक्ष्मा के पसीना, रक्तप्रदर, कृमिशूल (pyrosis) तथा शूल रोगो मे प्रयुक्त होता है। पत्तो को गर्म कर प्रलप द्वारा व्रण

शोथ को नष्ट करता है। पत्तो के क्वाथ (decoction) से अतिसार, अथवा प्रदर मे क्रमश मलाशय (uterus) एव मूत्राशय मे पिचकारी देते हैं। गलक्षत (sore throat) और मुख रोग मे गरारे (gargle) और कुल्ला करत हैं। पलाश-बीज विरेचक (cathartic) एव कृमिनाशक हैं। फल के क्वाथ (decoction) को शोरा (नौसादर) के साथ रुक रुक कर पेशाब आने (मूत्रकृच्छ) म सेवन कराने से पेशाब सरलता से हो जाता है। पलाश बीजो का नीबूरस के साथ लेप मधुमेह के कारण उत्पन्न खुजली (कण्डु), दाद, वेदनारहित क्षत (lesion) एव भगन्दर मे करना चाहिए। पलाश पुष्प कषाय (astringent) तथा मूत्रकारक होता है। पेडू (abdomen) पर पुष्पो के दलो को बिछाकर बाध रखने से दर्द के साथ रुक-रुक कर पेशाब आना दूर हो जाता है तथा आतवस्राव (secretion of menses) कराता है।

पाटल

(Cocsalpinia Bandu Calla)

भाषायी नामभेद	कृष्णपाटल क नाम—हि०—पाटल और पाडर, ब०—पारुल म०—रक्तपाडर, गु०—पाकव, क०—हादरी, ते० कलगोट्ट, ता०—पदि, इ०—Banduknut सफेद पाटल क नाम—हि०—सफेद पाडर और घण्टा-पाटल, ब—घण्टापारुल, म०—श्वेतपाटल, गु०—धोली-वकव, क०—बिलापहादरी, फा०—रवायइबल्ली।
सस्कृत नाम	पाटली, पाटला, अमोघा, मधुदूती, फलेरुहा, कृष्णवन्ता, कुवेराक्षी, काचस्थाली, अलिवल्लभा, तापुष्टी आदि कृष्णा पाटल के नाम हैं। मुष्कक, मोक्षक, घण्टापाटलि, काष्ठपाटला, काचस्थाली आदि श्वेत पाटल के नाम हैं।

विवरण पाटल की दो जातिया होती हैं—कृष्ण तथा श्वेत। सफेद पाटल

का मुष्कक तथा घण्टापाटलि भी कहा गया है। 'भानुमति' के रचयिता विश्वामित्र का कहना है कि मुष्कक भी कई प्रकार का होता है—

श्वेतपुष्प, कालपुष्पो, रक्तपुष्पस्तथव च।
पीतपुष्प वरस्तपु कालपुष्प प्रकीर्तित ॥

(भानुमति, सू० 11)

अतएव ताम्र अथवा लाल फूल वाला रक्तमुष्कक, सफेद फूल वाला श्वेतमुष्कक तथा पीले फूलवाला पीतमुष्कक स्वरूप म एक ही हैं। वैद्य अधिकतर लाल फूल वाला पाटल ही प्रयोग में लाते हैं किन्तु कुछ स्थानों पर रक्त एव पीला दोनों ही प्रकार का पाटल प्रयोग म लाया जाता है। बगाल में रक्तपाटल (घण्टा पारुल) अत्यन्त सुलभ है। उत्तर प्रदेश और आसाम में कृष्ण, रक्त तथा पीला (पीत) तीनों ही प्रकार के पाटल पाए जाते हैं। इनका मुख्य प्राप्ति-स्थान जगल प्रदेश तथा पहाडी तराइया हैं। रक्तपाटल सवत्र पाए जाते हैं किन्तु शेष पाटल समतल भूमि पर पैदा नही होते बल्कि ये केवल अल्मोडा और नैनीताल की तराइयो म अधिकतर ढालू भूमि म पैदा होते हैं।

पाटल के वृक्ष बहुत ऊचे होते हैं। लम्बे पत्ते के डठल मे दो जोडे या चार जोडे पत्तो के अगले भाग म एक अकेला पत्ता रहता है। पहला जोडा तथा अन्त का अकेला पत्ता दूसरे पत्तो की अपेक्षा बडा, पत्तो का डठल अपनी जड पर मोटा होता है। आरम्भ म छोटे पत्ते कोमल तथा पीछे से सफेद होते हैं। जबकि बडे होने पर कठोर एव खुरदरे हो जात हैं। इस वृक्ष पर ग्रीष्म ऋतु म फूल लगते हैं और ये शाखाओ के साथ पुष्पदण्ड मे लगे होते हैं। रक्तपाटल के पुष्प कुछ सफेद-लाल और पुष्पदलो (petals) से मिले हुए सुगन्धित होते हैं। इन पुष्पो मे मधु (शहद) बहुत होता है यहा तक कि यदि दस बारह पुष्पो के झाड लेन ॥ ही 100-150 ग्राम शहद निकल आएगा। अतएव इसे 'मधुदूति' भी कहते हैं जो पर्वतीय प्रदेश मे अधिक होता है। इसका कुण्ड (sepals) घण्टे (bell) की आकृति तथा रोयेंदार होता है। कुण्ड का ऊपर का भाग चार भागो म विभक्त होता है।

पीले पुष्प वाले पाटल म यह विशेषता है कि इसके पत्ते चार जोडे से कम नही होते और ऊपरी भाग म केवल एक अकेला पत्ता होता है। पत्ते का भाग कुछ कटा हुआ और आगे से छोटा होता है। इसकी फली कमजोर बडा एव फली हुई चौडी होती है। सफेद पुष्प वाला पाटल भी पर्वतीय प्रदेशो मे पाया जाता है। यह बहुशाख तथा छायाप्रदान वृक्ष है। पत्ते 1 4 जोडे और ऊपर अकेला पत्ता रहता है। पहला जोडा सर्वाधिक बडा एव चौडा होता है। सम्पूर्ण पत्ता बिना कटा फटा होता है जिसका अगला भाग छोटा किन्तु ऊपर से मुलायम होता है। इसका पुष्प अपेक्षतया छोटा, ताम्राभ श्वेत (Copper-white) रंग वाला, रात्रि

मे सुगन्ध देने वाला तथा उभरी हुई आवृति वाला होता है।

गुण पाटल कषैला, कड़वा, उष्णता-रहित, त्रिदोषनाशक और अरुचि (nausea), श्वास, सूजन, रुधिरविकार, वमन (क), हिचकी (hycup) तथा तृष्णा (प्यास) भी दूर करने वाला है। इसका पुष्प कषैला, मधुर, प्रशीतक, हृदय को हितकारी, कफ और रक्त पित्त का हरन वाला, कंठ का हितकारी है और पित्त, अतिसार को नष्ट करन वाला है। इसका फल हिचकी, रक्तविकार और पित्तविकारनाशक है। पाटल प्रशीतक, थकान दूर करने वाला तथा मूत्र कारक (diuretic) है। यह अग्निमांद्य, ज्वर, खासी, शोथ (dropsy) के कारण उत्पन्न पीड़ाओं म दिया जाता है। पाटल के फूल का चूर्ण शहद के साथ सेवन करने पर विकट हिचकी को रोकता है। इसका रासायनिक विश्लेषण करने पर देखा गया कि पुष्प मे अलब्युमिन, शर्करातत्व (saccharine), भाम तथा म्युसिलेज पदार्थ पाए जाते हैं।

पिलखन

(Ficus Virance)

भाषायी नामभेद — बं०—पाकुड़ गाछ, म०—पिंपरी वृक्ष, गु०—पीपय, क०—हसुरी।

संस्कृत नाम — प्लक्ष, जटी, पर्करी, पर्कटी आदि।

विवरण यह एक छायाप्रधान वृक्ष है। इसके तने आदि से बरगद (बट) की तरह प्ररोह (shoot) निकलते हैं किन्तु कम। पत्ते कोमल, लम्बे हरे रंग के होते हैं। पुष्प इसका दिखाई नहीं देता अर्थात अप्रकट है। फल सफेद रंग के होते हैं। कच्चे रहने पर फल हरे होते हैं। इनकी उत्पत्ति पक्षियों द्वारा होती है। पक्षी इसके बीज को खाकर जब दूसरी जगह बैठकर बीट करते हैं तो ये तभी उगते हैं पेड़ों से पृथ्वी पर गिरने वाले बीज कभी नहीं उगते। वैसे वर्षा ऋतु मे इसकी शाखा काटकर भूमि मे दबा देने से भी वृक्ष उग आता है। ग्रीष्म ऋतु मे

इस पर फल लगता है। फल छोटे छोटे बेर (plum) के समान गोल होते हैं जिनमे अन्दर छोटे छोटे बीज होते हैं। इसी कारण इस वृक्ष को क्षीरी जाति में वर्गीकरण किया गया है। चैत्र मास में पत्ते झड जाते हैं और गर्मी से पूर्व नए पत्ते निकल आते हैं।

गुण पिलखन कषैला, प्रशीतक और व्रण (ulcer), योनिरोग, जलन, पित्त, कफ, रक्तविकार, सूजन तथा रक्तपित्तनाशक है।

पीपल

(Ficus Riligiosa)

भाषायी नामभेद बं०—अश्वत्थ और अशोथ गाछ, म०—पिंपल, क०—अरली, गु०—पीपलो, ते०—राई चेटटु और कुलुजुव्विचेटटु, फा०—दरख्तलरजा, इं०—Poplar leaved fig tree

संस्कृत नाम बोधिद्रु, पिप्पल, अश्वत्थ, चलपत्र, गजासन आदि।

विवरण पीपल हिन्दुओं का एक पूजनीय वृक्ष है। ब्राह्मण रूप में इसकी पूजा की जाती है। इसका प्रत्येक भाग शरीर के लिए उपयोगी होने और हवन में लकडी का प्रयोग प्रदूषण को हरने के कारण ही इसकी अधिक मान्यता है। यह छाया देने वाले वृक्षो मे सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि इसकी छाया शीतल है। इसके पत्ते कोमल, चिकने और हरे-पीले रंग के होते हैं। पत्तो की टहनी पतली और लम्बी पायी जाती है। पत्तो की आकृति पान के पत्तो के समान किन्तु विशेष नोकदार शिरा (vein) पूर्ण होती है। इसके पुष्प दिखाई न देने के कारण ग्रन्थकारो ने 'गुह्यपुष्पक' कहा है। इसके पुष्प बरगद वृक्ष के पुष्पो से मिलते जुलते हैं। चैत्र मास के पतझड (autumn) काल मे इसके पत्ते गिर जाते हैं और वर्षा से पूर्व ही कोमल पत्तो से पुन शोभित हो जाता है। फल बहुत लगते हैं। कच्चे फल हरे किन्तु पकने पर लाल रंग के होते है। इनका स्वाद मधुर होता है। इनसे सफेद दूध निकलता है।

गुण पीपल देर मे पचने वाला, प्रशीतक, भारी, कसैला, रूखा, वर्ण को उत्तम करने वाला, योनि (vagina) को शुद्ध करने वाला और पित्त, कफ, व्रण, तथा रक्तविकार को नष्ट करने वाला है। बच्चो के होठ (lips), जीभ, तालु, मुख पकने और मुह आने मे शहद के साथ पीपल चूर्ण का लेप हितकर है। इसके बीजो का चूर्ण श्वास रोग (asthma) मे लाभदायक है। पीपल के क्वाथ के साथ पकाया तेल प्रदर तथा आमरक्तातिसार मे हितकर है। इसके क्वाथ (decoction) को व्रण (ulcer) एव त (lesion) आदि के धावन तथा लालास्राव (salivation) मे प्रयोग किया जाता है।

पीपल (पारस)

(Thespasia Populnea)

भाषायी नामभेद अ०—गजशुण्डी, म०—पिंपरी वृक्ष, गु०—पारशपीपलो, क०—क्मरस्ली, तै०—घेल गारवी, ता०—पारिश और पूवरश, फा०—येलासवेला, इ०—Hibiruxus

संस्कृत नाम पारीष, पलाश, कपियूत (कपितन), कमडलु, गदभाण्ड, म दराल, कपीतन, सुपाश्वक आदि।

विवरण इसके वृक्ष पीपल की तरह ही होत हैं। इसको कही क ी गजदण्ड या गजदुण्द भी कहते हैं। पीपल मे फूल दिखाई नही पडता जबकि पीले रग का फूल आता है। आकार भिंडी (lady's finger) के फूल से मिलता-जुलता है। इसकी पत्तियां का आकार भिंडी की तरह ही होता है। ग्रीष्म ऋतु से पूर्व इस पर फूल लगता है तथा फल वर्षा ऋतु म आता है।

गुण पारस पीपल चिकना, खट्टे फल वाला, जड का स्वाद मीठा, कसैला, और स्वादिष्ट मीग (kernel) वाला तथा कृमि, वीय एव कफ (phlegm) को बढाने वाला है।

पीपल (बेलिया)

(*Thespasia Macrophylla*)

भाषायी नामभेद गु०—बलिया पीपलो, ते०—चेट्टु।
संस्कृत नाम नदी वक्ष, प्ररोही, गजपादप, स्थाली वक्ष, क्षयतरु, क्षीरी और वनस्पति आदि।

विवरण बेलिया पीपल का आकार पीपल से मिलता-जुलता है। पत्ते इतने बड़े होते हैं कि उनसे थाली (plate) का काम लिया जा सकता है। और इसी कारण इसे 'स्थाली वक्ष' कहते हैं। इसके नीचे बैठकर हवा के सेवन से क्षय रोग मे आराम होता है अत 'क्षयतरु' भी कहते हैं। इसकी जड़ें मोटी होती हैं। इसकी पत्तियों को हाथी बड़े ही चाव से खाता है इसीलिए 'गजपादप' कहते हैं। इसमे भी पुष्प गुप्त रहता है। इसमे प्ररोह (shoot) निकलते हैं किन्तु पीपल मे यह नही पाई जाती। पत्ते तोडने पर दूध निकलता है। शेष सभी वर्णन पीपल के समान हैं।

गुण बेलिया पीपल हल्का, मधुर, कड़वा, कषैला, उष्ण, पकाने तथा रस मे चरपरा, ग्राही और विष, पित्त, कफ तथा रुधिरविकारनाशक है।

बड़हल

(*Artocarpus Lacoochai*)

भाषायी नामभेद बं०—डेफा और मादार, म०—वटारफल, गु०—क्षुद्र पनस।
संस्कृत नाम लकुच, क्षुद्र, पनस लकुच, डहु।

विवरण बड़हल के बहुत ऊंचे वक्ष जगलो तथा गावो मे सर्वत्र पाए जाते हैं। काण्ड स्थूल (stout), त्वचा (rind) खुरदरी एव काले रंग की फटी होती है।

काटने पर सफेद दूध निकलता है जो तत्काल लगी चोट को ठीक करने मे उत्तम औषधि है। पत्ते चौडे बरगद की तरह खुरदरे बडे बडे होते हैं। डेढ दो इच लम्बी टहनी पर 9-10 इच लम्बा पत्ता होता है जिसकी चौडाई भी लगभग बराबर होती है। इनके तोडने पर भी दूध सफेद रग का निकलता है। पुष्प पीले गोल गोल होते हैं। वर्षा तथा वसन्त (spring) ऋतु मे फल आते हैं अत फल भी दो बार आते हैं किन्तु वसन्त ऋतु के पुष्पित होने पर फल अधिक लगते हैं। फल की आकृति गोल अथवा ग्रथिल, कच्चा फल हरा किन्तु पकने पर पीला हो जाता है। भीतर कटहल के फल की तरह छोटे छोटे बीज निकलते है।

गुण कच्चा बडहल उष्ण, भारी, ग्राही, मधुर, खट्टा, तीनो दोष तथा रुधिर (blood) का खराब करनेवाला, वीर्य (power) तथा कामाग्नि को नष्ट करनेवाला और नेत्रो को हानि पहुचानेवाला है। पका हुआ फल मधुर, अम्ल, वात पित्तनाशक, कफ तथा जलन उत्पन्न करनेवाला, रुचिकारक, वीर्यवर्धक है।

बबूर

(Acacia Arabica)

भाषायी नामभेद	ब०—बाबूलगाछ, म०—बाभूल और बाभल गु०—बावल, क०—पुलई, ते०—बलथतडु, इ०—Acacia tree
सस्कृत नाम	बब्बूल, किंकिरात, किंकिराट, सपीतक, आभा, पटपद मोदिनी।

विवरण किन्ही किन्ही स्थानो पर इस वृक्ष को बबूल अथवा कीकर भी कहते है। बबूल के पेड जलासन्न भूमि और काली मिटटी म अधिक पैदा होते हैं। इसका काण्ड (trunk) स्थूल (stout) छाल फटी हुई तथा खरदरी होती है। इसके पत्ते आवले के पत्तो की तरह किन्तु छोटे और बडी टहनी मे कई जोडे लगे होते है। इनमे के काटे सफेद एक से तीन इच तक लम्बे जोडे मे होते हैं। इसके पुष्प गोल, पीले-से कुछ सुगधित तथा लम्बी कमजोर टहनी पर लगे होते है। इसकी फली 7-8 इच लम्बी, चपटी किन्तु दो बीजो के बीच म पतली होती है। फली मे बीज सख्या 8 से 10 तक होती है। बीज गोल, चपटे तथा धूमर

(कोकाकोला) रग के होते है । स्थान-स्थान पर बबूर के तने पर चाकू आदि से चोट मारने पर इस स्थान से सफेद रग का निर्यास (gum acacia) निकलता है जिसको ग्रीष्मकाल मे सग्रह किया जाता है ।

गुण बबूल ग्राही और कफ, कुष्ठ, कृमि तथा विषनाशक है। इसकी छाल कषाय एव बल्य (tonic) है । छाल का क्वाथ गलक्षत (sore throat) अथवा अधिक लालास्राव म कुल्ला करने एव व्रण आदि धोन म प्रयाग किया जाता है । इसका निर्यास प्रशीतक, स्निग्ध एव पोषक है अत यह श्लेष्मधरा कला (mucous surface membrane) की उत्तेजना से होने वाले रोग जैसे खासी, गलक्षत, अनगत श्लेष्म दोष, रक्तातिसार (dysentry), श्वेतप्रदर (Leucorrhoea), मूत्र रोग (cystistis) तथा रुक रुक कर पेशाब आने वाली पीडाओ मे सेवन किया जाता है । फोडा फूटने पर त्वचा (skin) मे जो जलन होती है वह इसके छाल-क्वाथ (bark decoction) से शात हो जाती है । विष भक्षण के कारण बहुत अधिक वमन अथवा अतिसार होन पर इसका क्वाथ उपकारी है। इसका गोद गोलियो को कठोर करने म प्रयोग किया जाता है । बबूल फल खासी म हितकर है । सडे व्रण पर इसके पत्तो का लेप लाभदायक है । कच्चा पत्ता सेवन करने से आमातिसार तथा प्रमेह शान्त हो जाता है । इसका निर्यास पेट मे पचकर शकरा (sugar) नही बनता, अत सोमरोग (bissirosis) अथवा मधुमेह (diabetes) म सेवन किया जाता है ।

बरगद

(Ficus Indicus)

भाषायी नामभेद	ब०—वटगाछ, म०—वड, गु०—वड, क०—आल, ते०—मर्रिचेट्टु, ता०—आलं, फा०—दरख्त रेशा, अ०—जातुद बाई और बध आव, इ०—Banyan tree
सस्कृत नाम	वट, रक्तफल, शृगह, न्यग्रोध, स्कधज, ध्रुव, क्षीरी, वैश्रवण, वास, बहुपाद, वनस्पति ।

विवरण बरगद का पेड छायाप्रधान वृक्षो म राजा की तरह है । इसके वृक्ष विशाल होते हैं और बहुत फैलते हैं । इसके तन बहुत मोटे होते हैं यदि इन्हें जमीन मे गाड दिया जाए तो यह हरा हो जाता है और वहा एक विशाल पेड

बन जाता है । इसके तने से जटाए (prop roots) लटकने लगती हैं और जमीन मे घुस जाती हैं तथा मोटी होकर वक्ष का रूप धारण कर लेती है । पत्ते कठोर, लम्बे चौडे, पिछला भाग खरदरा किन्तु पत्रादर कोमल एव हरित (greenish) वण का होता है । पत्ते का डठल मोटा तथा एक डेढ इच लम्बा होता है ।

बरगद की पत्तिया पतझड (autumn) मे झड जाती हैं और नवीन पत्ते निकल आते हैं । इसके शुग (अग्रभाग) वडे और नोकदार होते हैं जिसके तोडने से सफेद दूध निकलता है । अत क्षीरी कहते हैं । यह दूध बहुत शक्तिदायक होता है । इसको 10 15 ग्राम प्रतिदिन सेवन करने से शरीर दृढ (robust) तथा बलवान व सुडोल हो जाता है । कायाकल्प क्रिया को ठीक कर शरीर को नया बना देता है । वसन्त ऋतु मे फून लगकर वर्षा ऋतु मे इस पर फल लग आते हैं । इसका पुष्प दिखाई नही देता अत कुछ लोग इसे पुष्पहीन समझते हैं । किंतु प्रकृति का नियम है कि बिना पुष्प के फल नही आत अत यह पुष्पहीन नही होता बल्कि पुष्प इसका गुप्त होता है । फल लाल-लाल गोल होत हैं ।

गुण बरगद प्रशीतक, भारी, ग्राही, वण (complexion) को उत्तम करने वाला, कसैला, और कफ, पित्त, व्रण (ulcer) विसप (eruption), दाह (sore) तथा योनिदोष को नष्ट करता है । यह वल्य (tonic) एव कपाय (astringent) है । यह सोमरोग (bissinosis), आमरक्तातिसार, सूजाक तथा शुक्र (sperms) क्षीणता मे प्रयुक्त होता है । हाथ परो के फटने म इसके दूध का प्रलेप हितकर है साथ ही यह दतशूल (toothache) की महौपधि है । पके फल को बीजरहित करके, सुखाकर कूटकर चूण बनाते हैं। 10 15 ग्राम चूण की मात्रा दूध के साथ सेवन करने से पूण बलदायक तथा रसायन (elixir) होता है ।

बहेडा

(Terminalia Belerica)

भाषायी नामभद व०—बहेडा और वयडा, म०—घाटिक वृक्ष गु०—वेडा, क०—तोरे, ते०—वल्लाताढे ता०—तीन, तण्डि एव तोअण्डि, फा०—वलले, सिं०—बुलु, इ०—Beleric Myrobalan

संस्कृत नाम	विभीतक, विभीतकी, विभीतकम, अक्ष, कषफल, कलिद्रुम, भूतवास, कलियुगालय।

विवरण बहेडा के वृक्ष बहुत बडे बडे होते हैं। ऊंचाई 100 से 150 फुट तक होती है। यह पर्वत तथा वन प्रदेशो में अधिक पाया जाता है। इसकी छाया स्वास्थ्यप्रद होती है। अत बंगाल के उद्यानो में यह मेढो (ridges) पर उगाया जाता है। इसके पत्ते बरगद के पत्तो की तरह आकार में छोटे होते हैं। हरड के साथ-साथ इसमें छोटे छोटे फूल लग आते हैं। फल दो प्रकार के होते है—गोल-गोल छोटे अथवा अण्डे की शक्ल के बडे-बडे। वजन में बीस ग्राम(एक कष)तक प्राय होते थे अत इन्हे कषफल कहते थे। किन्तु अब ये अधिक से अधिक दस ग्राम तक वजन के होते है।

गुण बहेडा पकाने मे मधुर, कषैला, कफपित्त का नष्ट करने वाला, प्रकृति मे उष्ण, स्पर्श मे शीतल, दस्तावर और खासी का नष्ट करने वाला है। यह रूक्ष (रूखा), नेत्रो को हितकारी, बालो को बढाने वाला और कृमि तथा स्वरभंग को नष्ट करने वाला है। बहेडे की मींग प्यास, वमन, कफ और वायु को हरने वाली है। यह कषैली और मदकारक (intoxicant) है।

बांस
(Bambusa Arundinacea)

भाषायी नामभेद	बं०—बांस, म०—वेल्लू, गु०—वांस, क०—परढीबिदोरु, ते०—कीचकई, फा०—नसब, ता०—मनगिल, इं०—Bambucane

संस्कृत नाम	वंश, स्वतसार, कर्मार, त्वचिसार, तृणध्वज, शतपर्वा शतफली, वेणु मस्कर, तेजन आदि।

विवरण बांस अधिकतर वन्य प्रदेशो में पाया जाता है। इसकी अनेक जातियां

हैं जिनमे जगल और उवर भूमि के भेद से ये दो प्रकार के हैं। इनम भी पोले (hollow) और छिद्र रहित (ठोस) उदाहरणाथ—कठवासी या वासी तथा वशिनी भेदो से भी दो प्रकार के हैं। पोले वासो को कागजी (कागदी) बास भी कहते हैं। ये पीले, मोटे, लम्बे तथा चिकने और हल्के होत हैं। इनको ही शतपर्वा कहा गया है। बासो की उत्पत्ति अधिकतर जगल और पवतीय भूमि मे होती है। ये वजनदार, भारी, पतले ठोस तथा मजबूत हात हैं। इन दोनो के बीच की एक और जाति होती है जिसे साधारणतया बास या देशी बास कहते हैं। बास काडज (अर्थात तने से उत्पन्न होने वाला होता) है। एक बास को रोपण करने पर समय पाकर उसमे से दूसरा, तीसरा, चौथा इस क्रम से वास निकलते हैं। वर्षा ऋतु की प्रथम वर्षा म इससे दूसरा अकुर निकलने लगता है। बहुत दिनो के बाद बास म फूल आत हैं। बास का फूलना देश, जाति तथा उसके अधिकारी का अशुभ सूचक माना गया है। पुष्पित होने पर बास देखने मे सु दर प्रतीत होता है, इसके फल देखने म जौ (Barley) की तरह होत हैं। जिनमे से चावल निकलते है और ये निधन व्यक्तिया द्वारा खाए जाते हैं। एक प्रकार के पतले तथा लम्बे पव (पोरा) वाल बास से वशी बनाई जाती है। पवतो मे एक प्रकार का छिद्रयुक्त बास पैदा होता है जिसे कीचक कहत हैं। किन्ही का मत है कि कीट दश या शुष्क होने पर फटने से ये छिद्र हो जाते हैं। पोले बासो की भी कई जातियां हैं। इनसे वशलोचन निकलता है।

गुण बास दस्तावर, प्रशीतक, स्वादिष्ट, कसैला, गर्भाशयशोधक, मलछेदक और कफ, पित्त, कोढ(कुष्ठ), रुधिरविकार, व्रण तथा सूजन को नष्ट करनेवाला है, बास के अकुर पकाने तथा रस मे चरपरे हैं तथा रुक्ष, भारी, दस्तावर, कसैले, कफकारक, स्वादिष्ट, दाहकारक, वात तथा पित्त को बढाने वाले है। बास के पत्ते आतव रजस्रावकारी (emmenagogue) हैं। वशलोचन उष्ण, बल्य एव शीत (Pectoral) है तथा यह कफरोग क्षय, खासी श्वास और ज्वर मे उपयोगी है। बास के कोमल पत्ते शाक बनाने के काम आते हैं तथा नमकीन पानी मे भिगोकर सेवन किए जाते हैं। इसकी गाठो का क्वाथ (decoction) लोकिया (lochia), अर्थात जलवत पदाथ जो प्रसव बाद योनिमाग से निकलता है, को बद करता है। इसके पत्ता का रस रक्तरोधक (haemetemesis) है। पुराने और सूखे बास की लकडिया टूटी हड्डी पर पटटी (splint) रूप मे बाधी जाती हैं। इसके फल दस्तावर, रुक्ष, कपल, पकाने पर चरपरे, वात तथा पित्तकारक, उष्ण, पेशाब बद करने वाले और कफनाशक हैं।

बेल

(Eagalmar Melanz)

भाषायी नामभेद	बं०—विल्व और बेल, म०—बेलवृक्ष और बेलफल, गु०—बीली, क०—बेल्लु ते०—मटीडी, इ० Bangal Kins
संस्कृत नाम	बिल्व, शाण्डिल्य शैलूष, मालूर, श्रीफल, गन्धगर्भ, शलाटु, कण्टकी और सदाफल आदि ।

विवरण बेल के वृक्ष बहुत बडे होते हैं। इसके काड बहुत मोटे तथा ऊपर की छाल (rind) फटी हुई सी सफेद रंग की होती है। इसमें तने में काटे नहीं होते। पतली पतली डालियो में काटे होते हैं जो बहुत तेज एवं मजबूत होते हैं। एक टहनी से तीन तीन पत्तियां निकला करती हैं। पत्ते की डाली एक से दो इंच लम्बी होती है। पत्ते हरे और रसहीन होते हैं। इनको कूटने से रस प्राप्त नहीं किया जा सकता। शरद ऋतु के अन्त में इसके ऊपर फूल की कलियां निकल आती हैं तथा एक-एक मंजरी में कई कलियां रहती हैं। इनके खिलने पर इनमें सफेद रंग के सुगंधित पुष्प आ जाते हैं। इनमें पहले छोटे छोटे फल लगते हैं जो धीरे धीरे बढ़कर ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ होते ही पुष्ट होकर पकना शुरू हो जाते हैं। इस समय बेल व न के सब पत्ते झड जाते हैं और केवल फल ही शेष रह जाते हैं। इन फलों का भार सौ ग्राम से लेकर ढाई किलोग्राम तक पाया जाता है। कच्चे फलो के ऊपर हरे रंग का पतला पर्दा रहता है और भीतर हरे-पीले रंग का गू द (pulp) होता है। पकते ही इनके आवरण (Pericarp) बहुत कठोर और पीले हो जाते हैं एवं भीतर का गूदा (मज्जा) लाल-पीला मिश्रित रंग का हो जाता है। इस समय इसमें एक सुन्दर सुगंध निकलने लगती है। इसे मनुष्य बड़ी रुचि से खाते हैं तथा शर्बत (syrup) बनाकर पीते हैं। इसकी लकडी बडी पवित्र मानी जाती है।

गुण बेल (बेल पत्थर) कषैला कडवा, ग्राही, रूखा, अग्नि तथा पित्त को हरने वाला, वात और कफ को हरने वाला, बलदायक, हल्का, उष्ण तथा पाचक है। पका हुआ बेल-पत्थर स्वादिष्ट सुगंधित, पोषक (nutritious), रसायन (elixir)और मृदुरेचक (laxative) है। इसके सेवन से बवासीर रोग पर नियंत्रण तथा चिर अजीर्ण (Chronic constipation) नष्ट हो जाता है। कच्चा, अधपके फल का क्वाथ (decoction) अथवा भुना हुआ (roasted) कच्चा फल (बेल) धारक (astringent), पाचक एव अतिसार (diarrhoea) रक्तातिसार

(dysentery) और आमातिसार(mucus diarrhoea)मे प्रयोग किया जाता है। पके हुए बेल का शबत अग्निमाद्य (dyspepsia) मे हितकर है। जड तथा छाल प्रशीतक होने के कारण ज्वर और श्वास से उत्पन्न दिल की धडकन मे उपयोगी है। ज्वर के कारण सिरदद और खासी मे क्रमश मस्तक तथा छाती पर बेल के पत्तो का लेप किया जाता है। बेल का मुरब्बा अतिसार एव रक्तातिसार मे घरेलू दवा है। दमा मे बेल के पत्तों का काढा (क्वाथ) बहुत हितकर है। बेल अधिक सेवन करने पर अफारा हो जाता है।

रासायनिक विश्लेषण करने पर देखा गया है कि बेल का गूदा म्यूसिलेज, पैकटिन, शकरा (sugar) टनिन, उडनशील तेल, कडव पदाथ तथा राख (ash) दो प्रतिशत वस्तुओ से बना है। इसकी लकडी की राख मे पोटेशियम एव सोडियम के यौगिक, चूने तथा लोह के फास्फेट, करिसयम कार्बोनेट, मैग्नीसियम कार्बोनेट सिलिका तथा रेत (बालू) के अश पाये जाते हैं। हर पीले रग का वातनाशक सुगन्धित तेल इसके ताजे पत्तों के आसवन (distillation) द्वारा प्राप्त होता है। यह तेल अल्कोहल एव कार्बन डाइसल्फाइड म घुलनशील है।

भारगी

(Clerodendron Seratum)

भाषायी नामभद	ब०—बामनहाटी, गु०—भारगी, क०—किरुट्टेमु, ते०—गदभरगी और नैपाचया।
सस्कृत नाम	भार्गी, अगभवा, पदमा, फजी, ब्राह्मण और यष्टिका।

विवरण इसके पेड अधिकतर जगलो मे पाये जाते हैं। इसके काण्ड शाखरहित अथवा अल्प शाख वाल होते हैं। इसकी पत्तिया काडे के चारो तरफ महुए के पत्तो की तरह होती हैं और स्तरो मे विन्यस्त रहा करती हैं। प्रत्यक स्तर मे चार-चार पत्ते होते है। पत्रादर (Leaf face) बडा तथा गाढे हरे (dark green) रग का होता है तथा पत्ते पीछे से हल्के हरे रग के एव तरगायित (waved)

होते हैं। पत्तों का डंठल छोटा होता है और अधिकतर कांड का भाग खनखर रह जाता है। फूल गाढ़े नीले तथा सफेद रंग की ललाई लिए होते हैं। फल सुंदर, रंगदार, गुच्छ पर लगे हुए चार भागों में विभक्त दिखलाई पड़ते हैं। प्रत्येक विभाग में मध्य के आकार में बीज लगे रहते हैं। इस पेड़ के पत्ते जड़ की तरफ अधिक होते हैं। इन पत्तों का साग (सब्जी) भी उत्तम तैयार होता है। बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश के जंगलों तथा तराइयों में अधिकतर इनकी उपज है।

गुण — यह रस में कड़वी, चरपरी, रूखी, अग्निकारी उष्ण, पाचक, हल्की, भूख बढ़ाने वाली [illegible], गुल्म, रुधिरविकार, सूजन, खांसी, श्वास, पीनस (नाक बहना) ज्वर तथा वातविनाशक है। भारंगी की जड़ उष्ण, रूक्ष एवं रसायन (elixir) है। यह [illegible] रोग, गण्डमाला (कंठमाला) अथवा आमवात में सेवन की जाती है।

भिलावा

(Sumecarpus Anacardium)

भाषायी नामभेद — बं०—भेला, म०—बिलवा और भिलावा, गु०—भिलामा, क०—गेरबीज, ते०—नल्लजीडी, ता०—तेंतांकोटे, फा०—बिलादुर, अ०—हबलकल्ब इं०—Marking nut

संस्कृत नाम — भल्लातक, अरुष्क, अरुष्कर, अग्निक, अग्निमुख, भल्ली, वीरवृक्ष, शोफकृत।

विवरण — भिलावा के वृक्ष बड़े-बड़े होते हैं। ये उत्तर प्रदेश और बिहार के जंगलों तथा बंगाल के हजारीबाग, वीरभूम, बालेश्वर इत्यादि प्रदेशों में बहुतायत से पैदा होते हैं। इसके तने सरल और काड की छाल हल्के बादामी रंग की होती है। शाखाएं छोटी छोटी। शाखाओं अग्रभाग दलबद्ध लम्बे एवं चौड़े होते हैं। पत्तों का अगला भाग गोल तथा पृष्ठ भाग श्वेताभ (whitish) होता है। फूल हरा-पीला (greenish yellow) फल हृदय की आकृति का काले रंग का होता

है जिसमे एक प्रकार का तल रहता है। कच्चे फल मे यह तेल सफेद किंतु पकने पर काला हो जाता है। जिस डण्डी पर फल लगत हैं वह आगे स मुलायम और प्राय फल की आकृति का चिकना किन्तु पकी अवस्था म पील रग का हो जाता है। इसकी लकडी मे बहुत रस निकलता है अत इसको छेदन करना सरल नही है। भिलावे के पुष्प का पराग मदकारक (intoxicant) है जो शोथ (dropsy) तथा खुजली (कण्डू) पैदा करता है। इसके पुष्पित वृक्ष क नीचे सोन से अथवा पुष्पपरागमय वायु के सेवन से मुख अथवा हाथ पैरो पर सूजन हो जाती है, कही कही तो मूढ़ता (stupor) भी हो जाती है। वर्षा ऋतु मे फूल आने पर शीत ऋतु म इसके फल पक जाते हैं।

गुण भिलावा कषला, ऊष्ण वीयवधक मधुर, हल्का और वात-कफ, उदर रोग अफारा, कुष्ठ, बवासीर, सग्रहणी, गुल्म, ज्वर, श्वेत कुष्ठ, अग्निमाद्य, कृमि तथा व्रण को नष्ट करने वाला है। इसका पका फल पाक अथवा रस में मधुर, हल्का, कषला, पाचक स्निग्ध, तीक्ष्ण उष्ण मल को छेदन करन वाला, भेदन मेधा (Abdomen) को हितकारी, अग्निकारक कफ, वात, व्रण, उदर रोग, कुष्ठ बवासीर, सग्रहणी, गुल्म, सूजन अफारा, ज्वर और कृमि आदि को नष्ट करने वाला है। भिलावे की गिरी (kernel) मधुर वीयवधक, पुष्टिकारक वात तथा पित्त को नष्ट करने वाली है। भिलावे की डण्डी मधुर, पित्तनाशक, केशो को हितकारी और अग्नि को दीपन करने वाली है।

भिलावे का गाढ़ा (viscous) काले रग का रस तीक्ष्ण होता है और फोडा (विद्रधि) अथवा घाव पैदा करता है। आमवात (Rheumatic) क रोगिया के कुष्ठ म सूजन वाले स्थान (leprous affection) पर अस्थि सन्धि (joint) के सूजन एव प्रदाह(जलन) में दद वाले अग(sprains) मे स्थानीय उत्तेजक (local stimulant) होन के कारण इसका प्रलेप किया जाता है। इसके लग जाने पर शरीर मे अत्यधिक पीडा तथा सूजन हो जाती है। इस फल की पतली छाल (epedrmis) का प्रलप गहरे नील रग के फोडे पदा करता है जो शीघ्र भरते नही और यहा तक कि आराम होने पर भी बहुत दिन अथवा आजीवन इसका दाग रह जाता है। इसके प्रलेप के कारण पीडा मे क्षार सवन और ऊपर 'लड-लोशन' लगाने से शान्ति मिलती है। जल म फलो को उबालने के उपरान्त शीतल जल से धोने से भिलावा शुद्ध एव खाने योग्य हो जाता है। भिलावा को तिल तल अथवा मक्खन के साथ सेवन करने स यह उष्ण, मादक, पाचक, रसायन है और नाडिया (nerves) को वल देता है। यह अग्निमाद्य, कृमि, नाडीदौबल्य (nervous debility) श्वास एव मिर्गी (epilepsy) मे सवन किया जाता है। रसायन रूप म यह गण्डमाला (scrofula), गुप्त रोगो (Vinereal diseases) तथा श्वास कष्ट को नष्ट करने मे दिया जाता है।

एक भिलावे को सूई में लगाकर दीपशिखा पर रखने से तेल निकलता है उसे दूध के साथ सेवन कराया जाता है। इस तेल को तालू (palate) एवं काग (Uvula) के शोथ में, जो तीव्र खांसी होती है, में दिया जाता है। गर्भस्राव रोकने के लिए भिलावे का बहिःप्रलेप किया जाता है। शोथयुक्त शीतल अंग में तथा बवासीर (piles) में भिलावे के फल का धूम (fume) हितकर होता है। भिलावा एक भयानक औषधि है अतः इसे सावधानी से प्रयोग में लाना चाहिए। अत्यधिक सेवन से भिलावा प्यास और पसीना पैदा करता है तथा अत्यधिक दाह (sore) मूत्रकृच्छ (strongury), रक्तमूत्रता (Haematuria), सदाह कण्डुयुक्त फोठोत्पत्ति (erythematous eruption) एवं अतिसार (diarrhoea) पैदा करता है। इसके प्रभाव को कम करने के लिए नारियल के रस को शक्कर (sugar) अथवा मधु (honey) के साथ सेवन करना उचित है। भिलावे के प्रभाव को कम करने में तिल का तेल और त्रिफला जल भी दिया जाता है। नारियल तेल (coconut oil) को शरीर पर मालिश कर भिलावा पाक अथवा क्वाथ बनाने में किसी तरह की रोग प्राप्ति नहीं होती। जल में भली प्रकार डूब जाने वाला भिलावा ही उत्तम श्रेणी का होता है। यह उन्माद अथवा त्रिदोष पैदा कर विशेष हानिकर है अतः इस हानि को दूर करने के लिए ताजा नारियल का रस प्रतिकारक (antidote) रूप में सेवन कराया जाता है।

भिलावा खानेवाला धूम्रसेवन, स्त्रीसहवास तथा मांस भक्षण त्याग दे और घी दूध का अधिक सेवन करे। नमक त्यागने से शीघ्र ही आराम मिल जाता है।

भोजपत्र

(Betula Bhojpatra)

भाषायी नामभेद — ब० — भुर्जिपत्र म० — भुजपत्र, गु० — भोजपत्र, क० — भुजपत्र, इं० Jacquemon tree

संस्कृत नाम — भूर्जपत्र, भूर्जचर्मी, बहुवल्कल आदि।

विवरण — भोजपत्र के पेड़ पर्वतीय प्रदेशों में 2000 फुट से अधिक ऊंचाई पर

पाये जाते हैं। इनकी छाल (rind) को ही भोजपत्र कहते हैं। छाल कागज तथा सूखे केले के पत्तो के समान होती है। यह पत्रादि लिखने के लिए कागज की तरह काम मे आता है। इसका धूम (smoke) लगाने से ग्रहबाधा नष्ट होती है।

गुण भोजपत्र कषैला और भूत (demon), ग्रह, कफ, कर्णरोग, पित्त, रक्तविकार, राक्षसबाधा, मेद (marrow) तथा विष विनाशक है।

महुआ

(Bassia Longifolia)

भाषायी नामभेद	बं०—मौल तथा मौया अथवा मउल एव जलपउल, म०—मोहाचावक्ष और जलमोहा, गु०—मुहुडा और जलमहुडो, क०—महुइप्पे और तोरेइप्पे, तै०—इयापिना, ता०—कठइल्लुपि, फा०—चका, इ०—Ellopa tree
सस्कृत नाम	मधूक, गुडपुष्प, मधुपुष्प, मधुस्राव, वानप्रस्थ, मधुष्ठील।

विवरण महुआ के वक्ष भारत के अधिकतर प्रातो मे पाए जाते हैं। इसकी उपज कुछ बालू (sand) मिश्रित दोमट (घूसरी) भूमि मे अधिक होती है। उत्तर प्रदेश मे इसकी उपज विशेष रूप से है। इसका तना स्थूल (stout) चिकना एव सफेद रग का धूसरित दिखाई पडता है। इसमे शाखाए विशेष निकल आती हैं। इसके पत्ते पीले हरे, चिकने और सफेद हल्के रोम से व्याप्त होते हैं जो हाथ से स्पर्श करने पर सफेद सफेद लग जाते हैं। शुरू म पत्तो की टहनी एक इच लम्बी होती है। शिराए (Veins) विशेष निकली होती हैं। जलीय भूमि म उपजने वाले को जल महुआ अथवा मधूलक कहते हैं। फूल सफेद तथा पील दो रग क होते हैं। पुष्पनल कुण्ड(sepals) के बराबर लम्बी, तिरछी, स्थूल कामल एव मुलायम होती है। पुष्पनल आठ भागो मे विभाजित होती है। फल गोल, अण्डाकार तथा द्वितीया क चन्द्रमा के समान तिरछे कई प्रकार के होते हैं। पकने पर मीठे और भीतर लाल अथवा काले रग के बाज हात हैं। फूल वसन्त ऋतु मे आत हैं तथा वर्षा ऋतु मे फल पक जाते हैं।

गुण महुवे का फूल मधुर, प्रशीतक, भारी, पुष्टिकारक, बल तथा वीर्यवर्धक और वात तथा पित्तनाशक है। इसका फल प्रशीतक, भारी, मधुर, वीर्यवर्धक, हृदय को अप्रिय और वात, पित्त, प्यास, रक्तविकार, जलन, श्वास, क्षत (lesion) तथा क्षय (consumption) नाशक है। महुवे के फूल का रस रसायन (elixir) है जो गण्डमाला अथवा वात मे उपयोगी है। इसके मीठे फूल का निकला हुआ रस उष्ण, भूख बढाने वाला (क्षुधावर्धक) और रम (Rum) नामक शराब के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। इसके फल का घृत हैं। यह शीत अथवा स्निग्ध होता है। इसके पुष्प पोषक (nutrient), बल्य (tonic), स्निग्ध (demulcent) एव मादक (intoxicant) हैं। इसकी मद्य (alcohol) को कई प्रदेशो म लिया जाता है। यह अतिसार के रोगी को उपयोगी है। फूल के क्वाथ (decoction) को शकरा (sugar) के साथ पान करने से प्यास, अतिसार, खासी तथा जडता (stupor) दूर होती है। इसका तेल सिरदर्द, क्षत, वात, हाथ पैरो की ऐंठन एव चमरोगो मे दिया जाता है।

मौलश्री

(Mimusops Elingi)

भाषायी नामभेद बं०—बकुलगाछ, म०—बकुली और घोखबुल, गु०—बोलसिरी, क०—बकुल, ते०—पागडा, ता०—मोगलमरक, इ०—Surinum Medler

संस्कृत नाम बकुल मधुगध, सिंहकेसरक, शिवभल्ली, पाशुपत, एकाष्ठील, बुक और वसु।

विवरण मौलश्री छोटी तथा बडी दो प्रकार की होती है। बडी मौलश्री के पेड बहुत बड़े-बडे होते हैं। इसकी त्वचा (rind) मटमैली अथवा कुछ सफेदी लिए होती है। पत्ते चिकने और जामुन की तरह के होते है। पत्ता की टहनिया कुछ मोटी एक इच लम्बी होती हैं। पत्ते का भाग तरगायित (waved)होता है। फूल

सफेद अथवा कुछ पीले अनीदार (कगूरेदार) चक्राकार छोटे छोटे होते हैं। यह पेड दो जातियो का होता है 1 स्त्री जाति, 2 पुरुष जाति। पुरुष जाति म फल नही आते। इसके पुष्प कुछ बडे होते हैं। स्त्री जाति मे फल आते हैं और पुष्प मे कुछ सिंदूरी पुष्प एक मे आते हैं जिसका फल भी सिंदूरी करौंदे की तरह होता है। पकने पर मधुर कषाय लगता है। फूल मे महक (flavour) सूख जाने पर भी बनी रहती है। बडी मौलश्री मे भी यही रूप-रंग हैं। इसका पुष्प बडा होता है। फल के भीतर काले रंग के बीज पाये जाते हैं।

गुण मौलश्री कषैली, न गर्म न सर्द (moderate), खाने मे चरपरी भारी, और कफ, पित्त विष, श्वेत कुष्ठ (leucoderma) कृमि तथा दन्तरोगनाशक है किन्तु बडी मौलश्री म इन गुणो के अतिरिक्त योनिदोष (शूल), प्यास, जलन, सूजन तथा रुधिरविकार को नष्ट करने वाले गुण भी विद्यमान हैं।

रीठा

(Sapindus Emarginatus)

भाषायी नामभेद	ब०—रीठे गाछ, म०—रीठा, गु०—अरीठा, तें०—कुकडी, फा०—फिन्दक हिंदी अ० बुन्दक, इ० Soapnut
संस्कृत नाम	अरिष्टक, मंगल्य, कृष्णवर्ण, अर्थसाधन, रक्तबीज, पीतफेन, फेनिल और गर्भपातन आदि।

विवरण रीठो के बडे बडे पेड अधिकतर जगलो मे पाए जाते है। पत्ते नीम के पत्तो की तरह एक एक टहनी मे छ छ जोडे लगे होते हैं। काण्ड (trunk) साधारण, स्थूल (stout) मटमला और छाल काले रंग की होती है। फल गोल गोल गुच्छो मे लगते हैं। पकने पर इनका रंग धूसर (मटमैला) हो जाता है। बीज काले-लाल रंग का होता है किन्तु भीतर की मींग (kernel) पीले रंग की होती है। बीज के ऊपर के छिलके को भिगोकर मलने से पीले रंग का फेन निकलता है।

गुण रीठा त्रिदोषनाशक, ग्रहो को दूर करने वाला और गर्भस्रावक (abortifecient) है।

रोहिणी
(Soymidafibrifiga)

भाषायी नामभेद ब०—चमारकषा और चमकषा, गु०—रोहिणी, म०—मासरोहिणी, क०—मासरोहिणी, इ०—Red wood tree

संस्कृत नाम मासरोहिणी, अतिविषा, व ता, चमकषा, कृया, प्रहारवल्ली, विकशा, वीरवल्ली आदि।

विवरण रोहिणी और मासरोहिणी दोनो ही वृक्ष जगल मे बहुत होते हैं। पत्ते खिरनी के पत्तो की तरह के होते हैं, किन्तु नीम के समान एक टहनी म आमने-सामने बराबर सात सात पत्ते होते हैं। फल छोटे छोटे लाल रग के पाये जाते हैं। रोहिणी छाल (bark) त्वचा (skin) को काला कर देती है।

गुण मासरोहिणी वीर्यवर्धक, दस्तावर (Purgativa)तथा त्रिदोषनाशक है।

रोहेडा
(Ander Sonia Rohituka)

भाषायी नामभेद ब०—रोढा और रयना, म०—रक्त रोहिडा, गु०—रगत रोहिडो, क०—मरडू मल ते०—पुलु मोदुगचेटटु।

संस्कृत नाम रोहीतक, रोही, दाडिमपुष्पक।

विवरण रोहेडा दो प्रकार का होता है—1 सफेद फूल वाला तथा 2 दाडिम

(अनार) पुष्प की तरह फूल वाला । दाडिम (अनार) पुष्प वाला आद्र (moist) भूमि मे अच्छी तरह बढ़ता है । पेड ऊचे होते हैं । इसके पेड बगाल म फरीदपुर जिले मे अधिक पाए जाते हैं । काण्ड साधारण सीधे, शाखाए पृथ्वी की तरफ लटकी हुई होती हैं अत यह झाडदार तथा छाया प्रधान वक्ष है । पत्ते एक टहनी मे चार म आठ जोडे किन्तु अन्तिम छोर पर एक पत्ता अकेला ही रहता रहता है । ऊपर के जोड नीचे क पत्र-जोडा से बडे होते हैं । फूल बिना टहनी के छोटे, सख्या मे अधिक गुच्छाकार होते हैं । इसके फल गोल और पीले होत हैं ।

गुण रोहेडा की छाल (bark) रसायन (elixir), कषाय (astringent) तथा बल्य (tonic) है । जिगर तिल्ली (liver spleen) के बढने, शिथिल होने और दुबलता मे यह प्रयोग किया जाता है ।

लिसोढा

(Cordia Myza)

भाषायी नामभेद ब०—बहुयार और चालता गाछ म०—भोकर और शेलवेट गु०—गुदी, क०—चेल्लु गोदिनी, ते०—नाकेरु और नुक्केरु ता०—विडि, फा० —सपिस्ता, अ०—सेपिस्ता दवक, इ०—Narrow leaved Sepistun

सस्कृत नाम बहुवार, शीत, उद्दाल, बहुवारक, शेलु श्लेष्मातक, पिच्छिल भूतवक्षक ।

विवरण लिसोढे का पेड 16-17 फुट से अधिक ऊचा नही होता । इसका काण्ड छोटा तथा टेढा होता है । शाखाए पथ्वी की तरफ झुकी हुई रहती हैं । इसके पत्ते गोल, पत्रोदर (leaf face) कोमल एव मुलायम किन्तु पत्ता पीछे से पीले रग का, खुरदरा होता है । फूल सफेद, छोटे, बहुसख्यक, गुच्छाकार होते हैं । शरद ऋतु म फूल लगते हैं और फल वर्षा ऋतु म पकते हैं । इसके फल

गाल, कच्चे फल पीताभ श्वेत (yellowish white) किन्तु पकने पर पीले हो जाते हैं। यह फल सूखने पर सिकुड कर काले रंग का हो जाता है। बीज अत्यन्त चिकना गूदे (pulp) में इसके भीतर रहता है।

गुण लिसोढा मधुर, कपला, कडवा, बाला(केशो)को हितकारी, और विष, विस्फोट (नासूर), व्रण, विसप (eruption), कुष्ठ, कफ तथा पित्तनाशक है। इसका कच्चा फल ग्राही, रुखा और पित्त, कफ तथा रक्तविकार को नष्ट करता है। पका हुआ फल मधुर, स्निग्ध, कफकारक, प्रशीतक और भारी है। यह फल कफ, खासी, मूत्रकच्छ (strangury), बहुमूत्रता एवं रेचक (cathartic) होने से पित्तविकार में दिया जाता है। इसकी छाल (rind) कोमल कपाय, बल्य क्षत कमजोरी अथवा पीडा (pain) में सेवन की जाती है। इसकी छाल क्वाथ से मुखक्षत में कुल्ले किए जाते हैं। अधिक मात्रा में यह मदुरेचक है। इसका गुदा (pulp) दाद (ringworm) की दवा है। इसका पत्ता क्षत (lesion) अथवा शिर शूल में प्रयोग किया जा सकता है। जावा द्वीप के लोग इसे बल्य (tonic) तथा ज्वर दूर करने वाला समझकर उपयोग में लाते हैं। इसका अचार भी तैयार किया जाता है।

लौंग

(Caryophyllus Aromaticus)

भाषायी नामभेद बं०—लवग म०—लवग, गु०—लविंग, क०—लवग कलिका, ते०—लवगलू, ता०—किरम्बेर, फा०—मेहक, अ०—करनफल, सि०—करान्बू, इ०—Cloves

संस्कृत नाम लवग, देवकुसुम, श्रीसन, श्रीप्रसूनक।

विवरण जजीबार और मलक्का द्वीपसमूह में लौंग अधिक पैदा होती है। नव वर्ष लौंग पर पहली बार पुष्प की उत्पत्ति होती है। पेड हरित वर्ण का

होता है और पतझड़ के दिनों में भी इसकी हरियाली बनी रहती है। इसमें बड़ी ही मोहक सुगंध रहती है। जिसको हम लौंग कहा करते हैं, वह इस वृक्ष के फूलों की कलियाँ होती हैं। लौंग के अग्रभाग में जो गोला लिए भाग दिखलाई पड़ता है वह इसके फूलों की चार पंखुड़ियों का संकुचित संगठन है। इसके भीतर अनेक पुंकेसर (stamen) और केवल एक ही गर्भतंतु (styla) रहता है। लौंग की उत्पत्ति के लिए प्रकृति ने इसमें भी स्त्री पुरुष भेद रखा है। लौंग वृक्ष की कलियाँ (calyx tube) जब लाल रंग की हो रहती हैं तब ही हाथों द्वारा इनका संचय किया जाता है और दो तीन दिन बड़ी बड़ी चटाइयों (mats) पर रखकर सुखा लेते हैं।

गुण लौंग हृदय को हितकर, प्रशीतक, पित्तनाशक, आंखों के लिए हितकर, विष को हरने वाली तथा बलवर्धक और मूर्द्धा (सिर आदि) के रोगों को हरने वाली है। तेज तथा कफ पित्त-कफ की नाशक, दर्दनाशक (दर्द शांत करने वाली), रुचिवर्धक, खांसी, श्वास और रक्त के दोष को हरने वाली, भूख बढ़ाने वाली, अन्न पचाने वाली, प्यास एवं वमन का नाश करने वाली है। चक्रदत्त के अनुसार "पिपासायामनूत्क्लेशे लवङ्गस्याम्बु शस्यते" लौंग का उपयोग पिपासा और उत्क्लेश (हर समय वमन होने जैसा प्रतीत होना) में बतलाया है। हैजा (cholera) की चिकित्सा में प्यास की शांति के लिए लौंग का जल पिलाया जाता है। अर्थात् जब प्यास अधिक लगे और उबकाई आवे तो लौंग का पकाया जल पिलाए।

रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें एक भारी (heavy), उड़नशील तेल 18 प्रतिशत, करियोफाइलिन (caryophyllin) कपूर जैसा पदार्थ, रेजिन ■ प्रतिशत, कुछ यूजेनिक एसिड (Engenic Acid), कुछ यूजनीन (engenin), टैनीन तथा लकड़ी के भाग (woody, fibre, gum etc) रहते हैं।

यह पचन निवारक (ant septic), प्रलेप के कारण स्पर्शज्ञानहारी (anaes theic), पाचक, वायुनाशक, सुगंधित, वमननिवारक (antiemetic) और आक्षेपहर (anti pamodic) है। त्वचा (skin) के ऊपर लेप करने से यह लालिमावर्धक (rubeficiant), फोड़ा पैदा करने वाली, स्पर्शज्ञानहर तथा पचन-निवारक है। मुख द्वारा सेवन करने पर रक्त-संचार और उसमें गर्मी बढ़ाती है, भूख और पोषणता (nutrition) को बढ़ाती तथा आंतों (intestines) में होने वाले शूल और आक्षेप को आराम पहुंचाती है। यह त्वचा, लालाग्रंथि (salivary glands), गुर्दे, यकृत (जिगर) एवं श्लेष्मकला (mucous membrane) में उत्तेजना उत्पन्न करती है। यह मुख, नाक, पसीना, पित्त, दूध और मूत्र के साथ अक्सर बाहर निकला करती है। लौंग रेचक द्रव्यों से उत्पन्न होने वाले उपद्रव स्वरूप शूल इत्यादि की शान्ति के लिए रामबाण सुगंधित औषधि है। इस प्रकार

गोल, कच्चे फल पीताभ श्वेत (yellowish white) किन्तु पकने पर पी हो जाते हैं। यह फल सूखने पर सिकुड़ कर काले रंग का हो जाता है। बी अत्यन्त चिकना गूदे (pulp) में इसके भीतर रहता है।

गुण लिसोढा मधुर, कषैला, कड़वा, बालों (केशों) को हितकारी, और विष, विस्फोट (नासूर), व्रण, विसर्प (eruption), कुष्ठ, कफ तथा पित्तनाशक है। इसका कच्चा फल ग्राही, रूखा और पित्त, कफ तथा रक्तविकार को नष्ट करता है। पका हुआ फल मधुर, स्निग्ध, कफकारक, प्रशीतक और भारी है। यह फल कफ, खांसी मूत्रकृच्छ (strangury), बहुमूत्रता एवं रेचक (cathartic) होने से पित्तविकार में दिया जाता है। इसकी छाल (rind) कोमल कषाय, बल्य अंत कमजोरी अथवा पीड़ा (pain) में सेवन की जाती है। इसकी छाल क्वाथ से मुखक्षत में कुल्ले किए जाते हैं। अधिक मात्रा में यह मृदुरेचक है। इसका गूदा (pulp) दाद (ringworm) की दवा है। इसका पत्ता क्षत (lesion) अथवा शिरःशूल में प्रयोग किया जा सकता है। जावा द्वीप के लोग इसे बल्य (tonic) तथा ज्वर दूर करने वाला समझकर उपयोग में लाते हैं। इसका अचार भी तैयार किया जाता है।

लौंग

(Caryophyllus Aromatic



भाषायी नामभेद बं०—लवंग, म०—लवंग, । ०—लवंग
कलिका ते०—लवंगलू ता ०—मेहक,
अ०—करनफल, सि०— ‹

संस्कृत नाम लवंग, देवकुसुम, श्रीसंज्ञ,

विवरण जंजीबार और मलक्का द्वीपसमूह में ल ा है। नव वर्ष लौंग पर पहली बार पुष्प की उत्पत्ति ह का

झडकर इसी ऋतु के अन्त मे इसमे पुष्प एव फूल लग आते है।

गुण बकायन प्रशीतक, रूखी, कडवी, ग्राही, कपली और कफ, पित्त, भ्रम, वमन, कुष्ठ, रुधिरविकार, प्रमेह, श्वास, गुल्म, बवासीर तथा चूहा के विष को दूर करने वाली है। बकायन की छाल थोडी मात्रा मे कडवी, बलकारक, धारक (astringent), ज्वरनिवारक (antiperiodic), और कृमिहर (anthelmintic) है। बच्चो के कृमि रोग (round worm) म तथा पुरुषो को ज्वर एव अजीर्ण (constipation) मे इसका सेवन कराया जाता है। पत्ते एव फूल रसायन (alterative) तथा पेशाब लाने (diuretic) वाले हैं। पत्तो का रस (juice) ज्वर, ग्रहणी, कमजोरी, पाण्डुता (pallor) कृमि, गलगण्ड, गण्डमाला, व्रण (घाव) और कुष्ठ (leprosy) मे प्रयोग किया जाता है। पत्तो और फूलो की पुल्टिस (poultice) गर्म करके वायु के कारण उत्पन्न शिर पीडा (nervous headache) मे प्रयोग होती है। नीम की तरह इसका भी प्रलेप फोडों (boils) पर किया जाता है। पत्तो का प्रलेप सडे व्रणो, बिना दर्द वाले गलगण्ड रोग तथा विसर्प म हितकर है। अधिक मात्रा मे बकायन का सेवन जडता, आखो मे अधेरा छाना, चित्तभ्रम, सज्ञाहीनता (stupor) पुतलियो का फलना, गले मे घडघडाहट, बहुत अधिक वमन (vomiting) के साथ विरेचन (purging) आदि इसके विष वत् गुणो के कारण होता है।

वरुण

(Crateava Religiosa)

भाषायी नामभेद ब०—वरुणगाछ म०—भाट वरुणा गु०—वान वारणो, क०—मदवसेल, त०—उरुमति और जाजिचेट्टु, ता०—मरलिगम।

संस्कृत नाम वरुण, वरण, सेतु, तिक्तशाक, कुमारक आदि।

विवरण इसके वृक्ष ऊचे तथा एक बडी टहनी मे तीन-तीन पत्ते होते हैं। पत्रोदर (leaf face) मसृण, गहरे हरे रग के, पीछे से पत्ते कुछ सफेद हरे रग के होते हैं। टहनी की जड मे पत्ता ऊचा नीचा होकर स्थित रहता है। फूल का दल

पेट का भारीपन और कब्जियत (constipation) को दूर कर लालास्राव को बढ़ाती है। यह अन्य मसालों तथा सेंधा नमक (rock salt) के साथ शूल, अजीर्ण, वमन और प्यास के रोगों में बहुत हितकर है। वातवेदना, गृध्रसी (sciatica) कटिशूल (lumbago), सिरदर्द, दांतदर्द में लौंग प्रलेप आदि के रूप में प्रयोग की जाती है। दीपशिखा पर भूनी लौंग मुख में रखने से मुखवायु को सुगन्धित करने वाली तथा गलदाह (sore throat) को दूर करने वाली है और मसूड़ों को मजबूत करने वाली है। लौंग का चूर्ण (लवंगादि चूर्ण) खांसी, श्वास आदि में प्रयोग किया जाता है। शिर पीड़ा तथा घ्राणरोग (coryza) में इसका प्रयोग बहुधा प्रलेप द्वारा होता है।

वकायन

(Melia Azedarch)

भाषायी नामभेद	बं०—घोड़ानिम्ब, म०—काणीनिम्ब, गु०—बकान, क०—महाबेड, ते०—पेदवया, फा०—तुजा कुनाय, अ०—बान, इं०—Bukayun
संस्कृत नाम	महानिम्ब, द्रेक, रम्यक, विषमुष्टिक, केशमुष्टि, निम्बक, कार्मुक तथा जीव आदि।

विवरण नीम की तरह वकायन (महानिम्ब) का वृक्ष भी गावों में अपने आप बिना उगाए पैदा हुआ करते हैं। इसके पत्ते नीम की तरह ही होते हैं किन्तु बड़े-बड़े 3 4 इंच लम्बे और एक इंच चौड़े होते हैं। कहीं-कहीं पर इसे 'पहाड़ी निम्ब' भी कहते हैं। फूल भी नीम की तरह नीलापन लिए होते हैं। फल गोल-गोल झुमकेदार झोप के झोप लगते हैं। इसके पत्तों को चबाने पर पहले कसैलापन मालूम होता है और बहुत देर के बाद कुछ कड़वा स्वाद प्रतीत होता है। पत्ता को अधिक मात्रा में खाने से मादकता के साथ विषवत् (narcotic poison) प्रभाव होता है। इसके गोंद से हींग (asafoetida) जैसी गंध आती है। किन्तु दूध नहीं निकलता—यही नीम तथा वकायन में अन्तर है। वसंत के आरम्भ में पत्ते

झडकर इसी ऋतु में वन में इसमें पुष्प एव फूल लग आते हैं।

गुण वकायन प्रशीतक, रूखी, कडवी, ग्राही, कषैली और कफ, पित्त, भ्रम, वमन, कुष्ठ, रुधिरविकार, प्रमेह, श्वास, गुल्म, बवासीर तथा चूहो के विष को दूर करने वाली है। वकायन की छाल थोडी मात्रा मे कडवी, बलकारक, धारक (astringent), ज्वरनिवारक (antiperiodic), और कृमिहर (anthelmintic) है। बच्चो के कृमि रोग (round worm) मे तथा पुरुषो को ज्वर एव अजीर्ण (constipation) मे इसका सेवन कराया जाता है। पत्ते एव फूल रसायन (alterative) तथा पेशाब लाने (diuretic) वाले हैं। पत्तो का रस (juice) ज्वर, ग्रहणी, कमजोरी, पाण्डुता (pallor) कृमि, गलगण्ड, गण्डमाला, व्रण (घाव) और कुष्ठ (leprosy) मे प्रयोग किया जाता है। पत्तो और फूलो की पुल्टिस (poultice) गर्म करके वायु के कारण उत्पन्न शिर पीडा (nervous headache) मे प्रयोग होती है। नीम की तरह इसका भी प्रलेप फोडो (boils) पर किया जाता है। पत्तो का प्रलेप सडे व्रणो, बिना दर्द वाले गलगण्ड रोग तथा विसप मे हितकर है। अधिक मात्रा मे वकायन का सेवन जडता, आखो मे अधेरा छाना, चित्तभ्रम, सज्ञाहीनता (stupor) पुतलियो का फैलना, गले मे घडघडाहट, बहुत अधिक वमन (vomiting) के साथ विरेचन (purging) आदि इसके विष वत् गुणो के कारण होना है।

वरुण

(Crateava Religiosa)

भाषायी नामभेद बं०—बरुणगाछ, म०—भाट वरुणा, गु०—वान वारणो, क०—मदवसेल, ते०—उरुमति और जाजिचेट्टु, ता०—मरलिगम्।

सस्कृत नाम वरुण, वरण, सेतु, तिक्तशाक, कुमारक आदि।

विवरण इसके वृक्ष ऊचे तथा एक बडी टहनी मे तीन-तीन पत्ते होते हैं। पत्रोदर (leaf face) मसृण, गहरे हरे रग के, पीछे से पत्ते कुछ सफेद हरे रग के होते हैं। टहनी की जड म पत्ता ऊचा नीचा होकर स्थित रहता है। फूल का दल

पृथक, संख्या में चार, विचित विकसित होने पर पुष्प का रंग हरिताभ श्वेत (greenish white) किन्तु पूर्ण विकसित होने पर स्वर्णिम (golden) हो जाता है। पुष्प पुष्पदंड में लगा होता है। पुंकेशर (stamen) लाल, गर्भकेशर की अपेक्षा कुछ छोटा तथा मूल (जड) में कुछ उभरा हुआ होता है। फाल्गुन चैत्र मास में पुष्पित होता है। फल गोल-गोल बेर के समान पाए जाते हैं।

गुण वर्ण पित्तशारक, मलभेदक (विरेचक), कसैला, मधुर, कड़वा, चरपरा रूखा (dry) हल्का, उष्ण (stimulant), भूख लगाने वाला और कफ (phlegm) मूत्रकृच्छ (strangury) पथरी (stone), वात (rheumatism), गुल्म (tumour), रक्तविकार तथा कृमिनाशक है। इसकी छाल (rind) पाचक, वल्य, मदुरेचक, अश्मरी (bladder stone) विनाशक है। क्षुधा वर्धक, पित्तनिसारक एव पेशाब लाने वाली जानकार इसकी जड की छाल अश्मरी एव मूत्ररोग (cystistis) दूर करने के लिए गोक्षुर (Tribulus Terrestries) अर्थात गोखरू के साथ प्रयुक्त होता है। इसके हरे पत्ते अथवा जड का नारियल, दूध अथवा घी के साथ लेप बनाकर शोथयुक्त अंग पर लगाते हैं। पैरों के तलुओं की सूजन में चरण के पत्तों का लेप किया जाता है।

वायविडंग

(Embilia Ribis)

भाषायी नामभेद बं०—विडंग, म०—मुवावडिंग, क०—वायुविडंग, ते०—वायुविडंगमु, ता०—वायविल, फा०—बरंग काबली, अ०—बरंज काबली, इं०—Babreng

संस्कृत नाम विडंग, कृमिघ्न, जंतुनाशन, तंडुल, वेल्ल, अमोघा, चित्रतंडुला।

विवरण इसके वृक्ष बहुत बड़े बड़े तथा जंगलों में पैदा होते हैं। इनकी पत्तियां मौलसिरी के पत्तों से मिलती जुलती हैं। अधिकतर ये पर्वतों की तराइयों में पाए जाते हैं। शीत ऋतु में इन पर लाल मखमली रंग के फूलों के गुच्छे लगते हैं जो

गोल-गोल फल-युक्त होकर रहते हैं । पत्ते चिकने और कुछ लालिमा (redish) लिए होते हैं । फलों के मजबूत हो जाने पर इन्हें तोड़ कर इकट्ठा करके सूख जाने पर इनको मसल देते हैं । अतएव पिसने से फलों के ऊपर का रक्तवर्ण का रंग छूटकर एकत्र हो जाता है । इन्हें कबीला कहते हैं । दोनों को जो एक एक में तीन-तीन अथवा चार चार मिले रहते हैं विडंग कहा करते हैं ।

विडंग की बेल भी होती है जो पेड़ का आश्रय लेकर ऊपर फैल जाती है । शाखा (branches) और प्रशाखा (branchlet) बहुत कोमल और सुन्दर रंग की होती है । पत्ते छोटे होते हैं । इसके फूल गुच्छाकार में छोटे छोटे हरे रंग के बहुसंख्यक होते हैं । पुष्पों की पंखुड़ियां सफेद, कोमल एवं रोवां (hair) युक्त होती हैं । बसन्त ऋतु में पुष्पित होकर वर्षा ऋतु में इस पर फल पकता है । बाजार में प्राप्त विडंग फल इसी लता का है ।

गुण वायविडंग चरपरा, तीक्ष्ण, उष्ण, रुक्ष, अग्निकारक तथा हल्का है । यह शूल (colic) अफारा, पेट के रोगों, कृमि, वात और मलबन्ध को नष्ट करने वाला है । विडंग चूर्ण रेचक है । इसके ताजे फलों का रस स्निग्ध, मूत्र लाने वाला है । विडंग की मंजरी (catkin) को पीपल-चूर्ण के साथ बच्चों को सदा रहने वाले कब्ज तथा खांसी में हितकर है । वायुनाशक होने के कारण विडंग अग्निमांद्य (dyspepsia) तथा अफारा (flatulence) में प्रयोग की जाती है । रसायन (elixir) होने से आमवात (rheumatism) व अनेक चर्म रोगों में सेवनीय है । अधिक समय तक इसका सेवन पेशाब को कड़वा और लाल करता है ।

शमी

(Prosopis Spicigera)

भाषायी नामभेद बं०—शाई, म०—शमी, गु०—खीजडो, क०—बनिका बाति, ते०—शमी चेट्टु, इं०—Spong tree

संस्कृत नाम शमी, शक्तुफला, तुंगा, केशहन्त्री, शिवा, फला, मंगल्या, लक्ष्मी, शमीर, अल्पिका आदि ।

विवरण शमी के पेड़ ठीक बबूर (acacia tree) के पेड़ से मिलते-जुलते हैं ।

काण्ड इसकी स्थूल (stout) त्वचा (rind) फटी, खुरदरी, काले रग की तथा अल्प शाखा वाली होती है। एक बडी टहनी (branchlet) मे बबूर के पत्ता की तरह पत्ते कई जोडे लगे हाते हैं। फूल मजरीवत पील रग के ग्रीष्म ऋतु मे लगते हैं। फल गाल ग्रथिल, ऊचे उभार वाले, कच्चे हरे किन्तु पकने पर काले रग के हो जाते हैं। फल के भीतर कुछ भुरभुरा सा भरा रहता है अत शक्तुफल कहते हैं। शाखाए कम होने के कारण अल्पिका कहलाता है। इसकी राख (ash) को हरताल के साथ लगाने से बाल झड जाते हैं और इसी कारणवश केशहन्त्री कहा गया है।

गुण शमी कडवा, चरपरा, प्रशीतक, कपला, रेचक (cathartic)हल्का और कफ, खासी, भ्रम, श्वास, कुष्ठ, बवासीर तथा कृमिनाशक है। शमी का फल पित्त कारक, रूखा, तथा केशो का नाश करता है।

शहतूत

(Morus Indica)

भाषायी नामभेद ब०—तूत और तूद, म०—तूने और सेंतूल, गु०—शेतूत, ते०—कम्बलि चेटटु ता०—मुपुकबड चेडि, फा०—शाहतूत और तूततुश, अ०—तूत और तूदहामिज, इ०—Mulberries

सस्कृत नाम तून, स्थूल, पूग, क्रमुक एव ब्रह्मदारु।

विवरण शहतूत दो प्रकार का होता है एक बडा और एक छोटा। बडे को शाहतूत तथा छोटे को केवल तूत ही पुकारा जाता है। तूत का पेड आकार मे छोटा होता है और इसके कटे किनारे वाले पत्ते भी बच्चे की हथेली से बडे नहीं होते। एक ही टहनी (पत्रवन्त) मे कटे-फटे आकार के विभिन्न आकृतियो वाले पत्ते होत हैं किन्तु बडे तूत अर्थात शाहतूत के पत्ते पान की तरह बडे-बडे पत्तो के किनारे कगूरेदार (धनीदार) दो इच लम्बे वन्त म लगे होते हैं। रेंगने वाली

रोएदार सुही जसा तूत का फल प्राय एक इंच लम्बा या उससे भी छोटा होता है जबकि शाहतूत का तीन इच तक होता है। तूत के पके फल लाल या काले रग के और स्वाद में खटट होते हैं जबकि शाहतूत के फल हरे-पीले रग के और शहद जैसा स्वाद होता है। इसकी उपज पजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, कश्मीर तथा कर्नाटक मे अधिक है। इसका काण्ड स्थूल, नम तथा मटमल (brown) रग का होता है। शीत ऋतु मे पत्ते झड जाते हैं और वसत मे पीले रग के फूल लग जाते हैं। इसकी शाखाए उपज के लिए लगाई जाती हैं वे शीघ्र ही छायादार पेड बन जाते हैं। सर्दियो मे पत्तेविहीन होकर धूप का आनद देता है तो गर्मियो में घने पत्तो वाला होकर धूप से रक्षा करता है। इसीलिए यह अधिक लोकप्रिय है।

गुण पक्का शाहतूत भारी, स्वादिष्ट, प्रशीतक, पित्त तथा वातनाशक है जबकि कच्चा फल भारी, दस्तावर, खट्टा, उष्ण और रक्तपित्त करने वाला है। अनेक देशो मे इसके फलो की शराब बनाई जाती है। इसके फलो का रस रक्त शुद्ध करता है। अधिक खाने पर भूख समाप्त करता है। इसकी छाल बहुत मजबूत होती है और कागज निर्माण एव वस्त्र उद्योग मे उपयोगी है। इसकी लचीली टहनियो से टोकरिया बनाई जाती हैं। इसकी लकडी रेकेट, बल्ले, हाकी, तागो के जुए एव चक्के (wheels) भी बनाए जाते हैं। बिना धुआ पैदा किए इसकी लकडी बहुत अच्छी जलती है।

शाल

(Shoria Rabusta)

भाषायी नामभेद बं०—शालगाछ और सलागाछ, म०—लघुरालेचा वक्ष, गु०—सलुग्दामर, ते०—एपचेटटु, ता०—कुगलियम, इं०—Sal tree

सस्कृत नाम शाल, सज, काश्य, अश्वकर्णिक, सस्यशबर, सजक, अजकर्ण, मरिचपत्रक आदि।

विवरण शाल के बहुत बडे-बडे पेड वनो मे होते हैं। यह जगल भूमि की उपज

है। पत्ते पतले और लम्बे होते हैं। आकृति बकरी के कान की तरह होने से अजकर्ण नाम है। पुष्प सुगंधित होता है। चैत्र मास मे पत्ते झड जाते हैं किन्तु बसत आरम्भ होते ही कोमल पत्ते और पुष्प आने शुरू हो जाते हैं। पुष्पित होने पर इसकी मधुर मादक गध प्राचीन समय से ही प्रसिद्ध है। इसके वक्ष सीधे और कम छायादार किन्तु बहुत लम्बे होते हैं। काण्ड (trunk) बहुत मजबूत होता है। इसके गोद को राल (resin) कहते हैं। कही-कही इसे शाखू भी कहते हैं।

गुण शाल कषैला, चरपरा, कडवा और व्रण (ulcer), पसीना, कफ, विद्रधि (abscess), बहिरापन (deafness), योनिरोग कर्णरोग का नष्ट करता है। यह उष्ण है और पाण्डुरोग (pallor), प्रमेह, कुष्ठ, विष एव व्रण विनाशक है। इसका पुष्प, त्वक (rind) तथा गोद बहुत ही व्यवहार मे आता है।

सम्हालू
(Vitex Negundo)

भाषायी नामभेद	ब०—निशिन्दा और नीलनिशिन्दा, म०—निर्गुण्डी और पाढरी निगुण्डी एव काली निर्गुण्डी, गु०—नगोड, अ०—अथलफ, फा०—फजगस्तु फाजन स्त आबी फूल वाली नगोड, क०—करीयल्लो, ते०—तेला वाविली, इ०—Chaste tree
सस्कृत नाम	सिन्दुवार, श्वेत पुष्प, सिन्दुक, सिन्दुवारक—ये श्वेत पुष्प वाले सम्हालू के सस्कृत नाम हैं। *नीलपुष्पी, निगुण्डी शेफाली सुवहा—ये नीले पुष्प वाले सम्हालू के सस्कृत नाम हैं।*

विवरण यो तो पुष्पो के रग और पत्तो की आकृति के आधार पर सम्हालू बहुत प्रकार का है किन्तु प्राय उत्तर प्रदेश मे नीले पुष्प वाला सम्हालू अधिक पाया जाता है। नील पुष्प सम्हाल का वक्ष प्राय झाडीदार (bushy) होता है। काण्ड बडा होता है और इसमे पत्ते कही तीन और कही पाच पाए जाते हैं। उत्तर प्रदेश

मे पाच पत्तो वाला तथा पजाब मे तीन पत्तो वाला अधिक पदा होता है। समुद्र मे किनारे वाले क्षेत्र मे भी तीन पत्तो वाला ही सम्हालू पाया जाता है। शीत ऋतु के अन्त मे तथा वसन्त (Spring) मे वक्षो क पत्ते गिरकर पुन पत्ते निकल आते हैं। इसके पत्तों में एक तीव्र गध (Pungent smell) निकला करता है। स्वाद तिक्त और फूल गुच्छाकार हैं। इसकी पत्तियो मे एक सुगधित तेल तथा राल (re in) होता है। फलो मे रजिन एसिड, मलिक एसिड और क्षारीय (alkaloid) रजक पदाथ पाया जाता है।

गुण दोनो प्रकार के सम्हालू—स्मतिदायक, कडवे, कषले, चरपरे हल्के, केशो (बाला) को उत्तम करने वाल, नेत्रो को हितकारी, और शूल, शोथ (dropsy), आमवात, कृमि, कुष्ठरोग, अरुचि (मितली) कफ तथा ज्वर को नष्ट करने वाले हैं। इनके पत्ते जन्तु (bacteria), वात तथा कफ को हरने वाले और हल्के हैं। इसके बीज रक्तस्रावरोधक तथा नासूर (स्फोटको) को बढा देने वाले हैं। यह प्लीहा (spl-en) वद्धि एव शोथ म हितकर हैं। चावल आदि अनाज, पुस्तक तथा कपडे कीडो द्वारा सुरक्षित करने के लिए इसके पत्तो को बीच-बीच मे रख देते हैं। सम्हालू रसायन (elixir) सुगधित, कडवा एव वेदनाहर (anodyne) है। इसका क्वाथ (decoction), शूल (colic) अग्निमाद्य (dyspepsia), वात एव कृमिरोग म सेवन किया जाता है। इसके पत्तो का प्रलप सिरदद मे कनपटी पर किया जाता है। भीतरी चोट क कारण जाडो के दर्दों, जोक (leech) काटने पर, तथा सुजाक के कारणवश अण्डकोषो (testicles) की सूजन पर इसकी पत्तियो का प्रलेप किया जाता है। दद दूर करने और सूजन समाप्त करने वाली इससे उत्तम अन्य औषधि नही है।

सतौना
(Alstonia Scholaris)

भाषायी नामभद	ब०—छातिमगाछ और छेतेन, म०—सातविण, गु० – सातिवन, क०—एलेले ते०—एडाकुल।
सस्कृत नाम	सप्तपण, विशाल त्वक, शारद, विषमच्छद आदि।

विवरण इस वृक्ष को कही कही पर सतवन एव छतिवन भी पुकारा जाता है।

इसके वृक्ष बहुत ऊंचे-ऊंचे होते है। त्वचा स्थूल (stout), सफेद, स्वाद मे कडवी होती है। काटने पर सफेद दूध निकलता है। इसके पत्ते छत्र के समान सात सात की सख्या मे फले रहते हैं और इसी कारण सप्तपर्ण कहते हैं। पत्ते चिकने हरे-पीले वर्ण के होते हैं। पुष्प हरिताभ श्वेत (greenish white) गुच्छाकार तथा गजमद की तरह सुगन्धित होते हैं। शरद ऋतु मे फूल लगने के पश्चात ग्रीष्म के आरम्भ मे लम्बी-लम्बी फली लगती हैं जो कठोर हो जाती हैं। फली के तोडने पर सफेद दूध निकलता है।

गुण सतौना भूख लगाने वाला, स्निग्ध, उष्ण, कपला, दस्तावर और व्रण, कफ, वात, कुष्ठ, रुधिरविकार तथा जन्तुनाशक है। सतौना की छाल (bark) रसायन (elixir) समझकर आमवात (rheumatism), वात (gout) एव चर्मरोग मे दी जाती है। पाचक होने के कारण प्राचीन उदर-रोग अथवा सग्रहणी (diarrhoea) मे देते हैं। कडवी होने के कारण ज्वरनाशक है जो कुनैन जैसा प्रभाव दिखाती है। रात को सोते समय एक ग्राम चूर्ण (bark powder) सेवन करना चाहिए। कोकण क्षेत्र मे दूध के साथ इसका प्रयोग कुष्ठ रोग मे करते हैं।

सदाबहार
(कुंद)

भाषायी नामभेद हि०—कुन्द, म०—कुन्द, क०—सुगग, त०—मोल्ला, गु० ढोलर। इं०—Evergreen

सस्कृत नाम कुन्द, माध्य, सदापुष्प।

विवरण इसके वृक्ष को माली बडे प्रेम से उद्यानो तथा बागो मे लगाते हैं। इसके इसके पत्ते नीले हरे (bluish green) रग के चिकने होते है। पत्तो वाली टहनी आधा इच लम्बी होती है। पुष्प सफेद मोती की तरह जो खिलने पर बहुत मीठी सुगन्ध देते हैं। यह प्रत्येक ऋतु मे पुष्पित होता है। सदा खिलते रहने के कारण

ही इसको 'सदापुष्प' कहते हैं। इसकी शाखा कुछ सफेद, मटमली, गोल किन्तु शीघ्र ही थोडे दबाव से टूट जाने वाली है।

गुण सदाबहार प्रशीतक, हल्का, और कफ, शिरोरोग, विष तथा पित्त को हरने वाला है।

सफेदा

(Eucalyptus)

भाषायी नामभेद यूकलिप्टस नामक वृक्ष मिरटेसी (Myrtaceae) कुल का सदस्य है। यह वृक्ष आयातित है और विदेशी वृक्ष होने के कारण भारत के प्रत्येक राज्य मे सफेदा नाम से अधिक लोकप्रिय है। इसका अन्य भाषाओ तथा सस्कृत मे कोई पर्याय नही है।

विवरण यूकलिप्टस (सफेदा) की चार जातिया विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिन्हें विश्व के विभिन्न भागो में सफलतापूर्वक रोपा गया है। ये जातिया हैं—1 यूकलिप्टस ग्लोबुलस (E glubulus), 2 यूकलिप्टस कैमलडुलसिस (E Camaldulensis), 3 यूकलिप्टस ग्रेन्डिस (E grandis), तथा 4 यूकलिप्टस सिट्रिओडारा (E Citriodara) आदि। मरुभूमि म यूकलिप्टस ग्लोबुलस, खराब मिटटी और लम्बे समय तक सूखे मौसम मे यूकलिप्टस, कैमलडुलयिस नम (moist) तथा जल निकास वाली क्षारीय मिटटी (alkaline soil) मे यूकलिप्टस ग्रेन्डिस और दस-पन्द्रह हजार मीटर की ऊचाई पर बर्फीले मौसम को सहन करने वाली जाति यूकलिप्टस सिट्रिओडारा उगाई जाती है।

सदा हरा रहने वाला यह वृक्ष युवावस्था मे पुष्पित होता है। वक्षो की ऊचाई 60 70 मीटर और तने की मोटाई 2 3 मीटर तक होती है। इसका तना सीधा और कुल उचाई का दो तिहाई होता है। तने की छाल (rind) सफेदी लिए हुए नीले रग की और पत्तिया 20 25 सेंटीमीटर लम्बी, चिकनी, गहरे हरे

रग तथा अग्रभाग म नुकीली होती हैं। कुछ जाति के वक्षा की छाल चिकनी और गुलाबी, क्रीम या सफेद रग की होती है। इन वृक्षो मे तेज वायु मे भी दृढ़ता से खडे रहने की क्षमता पाई जाती है। इन पेडों की देख भाल अथवा रख-रखाव की भी विशेष आवश्यकता नही होती क्योकि पत्ती का स्वाद अच्छा न होने के कारण पालतू पशु तथा जगली जानवर इसकी पत्तियो को पसन्द नही करते हैं।

यूकलिप्टस की अधिकतर जातिया आस्ट्रेलिया मूलक हैं किन्तु कुछ जातिया न्यूगिनी, तस्मानिया और इण्डियन आर्कीपिलागो मे भी मिलती हैं। भारत मे सर्वप्रथम सन् 1843 ई० म सफेन्ग ऊटी (नीलगिरि) म लगाया गया था और इसके बाद मसूर मे तथा बीसवी शताब्दी क सातवें दशक के अन्त तक देश के अन्य प्रदेशो (उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात, बगाल और दिल्ली) मे भी फल गया। यूकलिप्टस उन वृक्षो म से है जो तेजी स बढ़त है और एक बार कटे वृक्षो से दोबारा कल्ले फूट निकलते हैं। इस प्रकार दस दस वर्ष के अन्तराल से इसकी चार फसलें ली जा सकती हैं। इन वक्षो की सबसे बडी विशेषता है कि विभिन्न जलवायु ऊचाई एव मृदाओ (soils) मे इनको आसानी से लगाया जा सकता है क्योकि ये वृक्ष तेजी से बढकर छायादार हो जाते हैं। खुली हुई मरुभूमि मे उगने वाले वक्षो मे साखाए अधिक होती हैं।

गुण यूकलिप्टस मे विद्यमान तल के कारण इसकी लकडी म दीमक (white-ant) नही लगती और मकान बनान के भी काम आती है। रेल की पटरी के नीचे स्लीपर भी बनाए जाते हैं। इसस कागज भी बनाए जाते हैं। पत्तियों से तेल और फूलो से शहद प्राप्त किया जाता है। इसकी पत्तियो से सुगंधियुक्त पदार्थ 'सिट्रोनेलाल' प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग सेंट उद्योग मे अधिकता से होता है। नवीनतम खोजो से पता चला है कि यूकलिप्टस जिन स्थानो पर उगता है वहा की मिट्टी से पानी खीच कर उस स्थान की भूमि को अनुर्वर (non furtile) बना देता है। तराई क्षेत्रो म बडे पमाने पर सफेदा लगाने से न केवल पहाडो की घाटियो (Valleys) मे वरन आस पास के क्षेत्रो का भी तापमान बढता है। यह वात पित्त कफ का नाशक, दद शान्त करने वाला, खासी, श्वास और रक्त दोष हरने वाला तथा प्यास और वमन का नाश करन वाला है। इसका तेल दद शामक और प्रशीतक है।

सलई
(Boswelia Therifera)

भाषायी नामभेद — हिं०—सलई, म०—सालई वृक्ष, गु—सालेडु, क०—तदीरु, ता०—कुर्सा।

संस्कृत नाम — शल्लकी, गजभक्ष्या, सुवहा, सुरभी, रसा, महेरुणा, कुन्दुरुकी, वल्लकी, बहुस्रवा आदि।

विवरण सलई के पेड़ बहुत बड़े बड़े जंगलों में पाए जाते हैं। इसके पत्तों की आकृति नीम के पत्तों से मिलती-जुलती होती है। इसको हाथी बड़े प्रेम से खाते हैं अतः 'गजभक्ष्या' नाम है। पुष्प सुगंधित होने के कारण 'सुरभी' नाम पड़ा। इससे निकलने वाले गोंद को 'कुन्दुरु' कहते हैं। इसके फल में तीन धारियां (stips) पायी जाती हैं।

गुण सलई कषैली, शीतल, पुष्टिकारक और पित्त (bile), कफ (phlegm), अतिसार (diarrhoea), रक्तपित्त (haemoptysis) तथा व्रण विनाशक है।

सहिजना
(Hyperanthera Moringa)

भाषायी नामभेद — बं०—सजिना और लाल सजिना, गु०—सरगवा तथा रातो सरगवो, क०—वासीवनुगी और कपनयनुगी, त०—मुनग, ता०—मोरग, इं०—Horseredish tree

संस्कृत नाम — शोभांजन, शिग्रु, तीक्ष्णगंधक, अक्षीव, मोचक।

विवरण सहिजने को पुष्प भेद से तीन प्रकार का माना गया है—1 श्वेत,

रग तथा अग्रभाग म नुकीली होती हैं। कुछ जाति के वृक्षा की छाल चिकनी और गुलाबी, क्रीम या सफेद रग की होनी है। इन वृक्षो में तज वायु म भी दृढ़ता से खड़े रहने की क्षमता पाई जाती है। इन पेड़ो की देख भाल अथवा रख-रखाव की भी विशेष आवश्यकता नही होती, क्योंकि पत्ती का स्वाद अच्छा न होने के कारण पालतू पशु तथा जगली जानवर इनकी पत्तियो को पसन्द नहीं करते हैं।

यूकलिप्टस की अधिकतर जातियां आस्ट्रेलिया मूलक हैं किन्तु कुछ जातियां न्यूगिनी, तस्मानिया और इण्डियन आर्कीपिलागो म भी मिलती हैं। भारत मे सवप्रथम सन् 1843 ई० म सफेद ऊटी (नीलगिरि) म लगाया गया था और इसके बाद मसूर मे तथा बीसवी शताब्दी क सातवें दशक के अन्त तक देश के अन्य प्रान्तो (उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात, बगाल और दिल्ली) म भी फल गया। यूकलिप्टस उन वृक्षो म से है जो तजी स बढत है और एक बार कटे वक्षों से दोबारा कल्ले फूट निकलत हैं। इस प्रकार दस दस वष के अन्तराल मे इसकी चार फसलें ली जा सकती हैं। इन वक्षो की सबसे बडी विशेषता है कि विभिन्न जलवायु ऊचाई एव मदाओ (soils) म इनको आसानी से लगाया जा सकता है क्योंकि ये वृक्ष तेजी स बढकर छायादार हो जात हैं। खुली हुई मरुभूमि मे उगने वाल वक्षो म सोखाए अधिक होता हैं।

गुण यूकलिप्टस मे विद्यमान तल के कारण इसकी लकडी मे दीमक (white ant) नही लगती और मकान बनाने के भी काम आती है। रल की पटरी के नीचे स्लीपर भी बनाए जात हैं। इससे कागज भी बनाए जाते है। पत्तियों से तेल और फूलो से शहद प्राप्त किया जाता है। इसकी पत्तियो से सुगन्धियुक्त पदार्थ सिट्रोनेलाल प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग सेंट उद्योग मे अधिकता से होता है। नवीनतम खोजो से पता चला है कि यूकलिप्टस जिन स्थानो पर उगता है वहा की मिटटी मे पानी खीच कर उस स्थान की भूमि को अनुवर (non furtile) बना देता है। तराई क्षेत्रों म बडे पमाने पर सफेदा लगाने से न केवल पहाड़ों की घाटियो (Valleys) मे वरन आस पास के क्षेत्रा का भी तापमान बढता है। यह वात पित्त कफ का नाशक, दद शान्त करने वाला, खासी, श्वास और रक्त दोष हरने वाला तथा प्यास और वमन का नाश करन वाला है। इसका तेल दद शामक और प्रशीतक है।

सलई
(Boswelia Theriferia)

भाषायी नामभेद — ब०—शलई, म०—शालई वृक्ष, गु—शालडु, क०—तदीबु, ता०—गुत्ती ।

संस्कृत नाम — सल्लकी गजभक्ष्या, सुवहा, सुरभी, रसा महेरुणा, कुन्दुरुकी, वल्लकी, बहुस्रवा आदि ।

विवरण सलई के पेड़ बहुत बड़े बड़े जंगलों में पाए जाते हैं। इसके पत्तों की आकृति नीम के पत्तों से मिलती-जुलती होती है। इसको हाथी बड़े प्रेम से खाते हैं अतः 'गजभक्ष्या' नाम है। पुष्प सुगन्धित होने के कारण 'सुरभी' नाम पड़ा। इससे निकलने वाले गोंद को कुन्दुरु कहते हैं। इसके फल में तीन धारियां (stips) पायी जाती हैं।

गुण सलई कसैली, शीतल, पुष्टिकारक, और पित्त (bile) कफ (phlegm), अतिसार (diarrhoea), रक्तपित्त (haemoptysis) तथा व्रण विनाशक है।

सहिजना
(Hyperanthera Moringa)

भाषायी नामभेद — ब०—सजिना और लाल सजिना, गु०—सरगवो तथा रातो सरगवो, क०—बालीवनुगी और कपनयनुगी, त०—मुनग्, ता०—मोरंग, इं०—Horseredish tree

संस्कृत नाम — शोभांजन, शिग्रु, तीक्ष्णगंधक, अक्षीव, मोचक ।

विवरण सहिजने को पुष्प भेद से तीन प्रकार का माना गया है—1 श्वेत,

2 नील तथा 3 लाल। सफेद रंग के फूल वाला सहिजना सर्वत्र सुलभ है। लाल फूल वाला सहिजना कहीं कहीं पर मिलता है। बंगाल में मालदह जिले, बिहार के दरभंगा तथा उत्तर प्रदेश के अनेक जिलों में यह पाया जाता है। नीले फूल वाला सहिजना बहुत ही दुर्लभ है। इसका काण्ड और छाल (bark) सफेद, खुरदरी एवं फटी होती है। फलियां कम होती हैं। पत्ते तथा शाखा का अग्रभाग कोमल चिकना और मृदु[1] होता है। इनको सब्जी बनाने के लिए लोग तोड़ लिया करते हैं। फूल बसंत ऋतु के अन्त और ग्रीष्म के प्रारम्भ में लगते हैं। कोमल हरे पत्तों के साथ पुष्प झोप के झोप लगते हुए इसकी शोभा को बढ़ाते हैं। इनमें पुनः हरे रंग की फलियां 10-15 इंच लम्बी लगती हैं। कच्चे रहने पर इनकी भी सब्जी बनाई जाती है। पकने पर इनमें से सफेद रंग के बीज निकलते हैं। एक फली में 8 10 बीज होते हैं।

गुण सहिजना चरपरा, तीक्ष्ण, उष्ण, मधुर, हल्का, भूख बढ़ाने वाला, रुचि-वर्धक, रूक्ष खारा, कड़वा, जलन पैदा करने वाला, ग्राही, वीर्यवर्धक, हृदय को हितकारी और कफ वात, सूजन, कृमि, मेद (fat), अपची (indigestive), विष, प्लीहा, गुल्म (tumour), गंडमाला, तथा व्रणों (ulcers) को नष्ट करने वाला है।

तीनों प्रकार के सहिजने में उपर्युक्त गुण हैं लेकिन सफेद सहिजना जलन अधिक करने वाला है तथा प्लीहा, व्रण, पित्त, रक्तविकार का नष्ट करने वाला है। लाल सहिजने में पूर्वोक्त गुणों के साथ भूख कम करने वाला एवं दस्तावर (purgative) है। सहिजने की छाल और पत्तों का रस बहुत बड़ी वेदना (शूल इत्यादि) को भी हरने में श्रेष्ठ है। इसके बीज नेत्रों को हितकारी, तीक्ष्ण (acrid) उष्ण, धातुओं के कम वर्धक और विष, कफ तथा वायु को शांत करने वाला है। इसके बीजों के चूर्ण को सूंघने से सिरदर्द अवश्य दूर हो जाता है।

यह आक्षेप निवारक (antispesmodic) कफनिस्सारक (expectorant) तथा मूत्रल (diuretic) है। इसकी जड़ों का प्रलेप त्वचा पर उत्तेजना (irritation) पैदा करता है। सेंधा नमक (rock salt) तथा हींग के साथ यह आन्तरिक सूजन (inflammation), अश्मरी (bladder stone) शर्करा (sugar) मूर्च्छा, मिर्गी, वातव्याधि (paralysis rheumatism), शोथ खांसी, बच्चों के पेट में अफारा तथा यकृत (liver) बढ़ने के कारण सूजन आने पर दिया जाता है। यूरिक एसिड

---

1 जो द्रव्य तीक्ष्ण के विपरीत अर्थात दाहकर व्रणपाचक एवं लालास्रावकारक न हो उसे 'मृदु' कहते।

के कारण पीडाओ (diathesis) मे यह मूत्रल (diuretic) औषधि रूप मे दिया जाता है। इसके डठल कृमिरोधक हैं तथा बीजो का तेल आमवात, जोडो के दद (gout) एव अन्य इसी प्रकार के दर्दों मे मदन किया जाता है। जीरा (cumin (seeds) के साथ सहिंजने का प्रलेप दतशूल (tooth ache) तथा दतकृमि (gum-boils) मे उपयुक्त है। यह शिर शूल शिरास्फीति (veneral nodes) और कर वौरी (syphilitic baboes) पर लेप किया जाता है। इसकी जड का क्वाथ दत रोग मे गरारे की तरह प्रयोग होता है। इसकी छाल (bark) गर्भपात (abortifacient) मे प्रयोग की जाती है। इसके गोद को दूध अथवा मीठे तल के साथ कान के रोगो मे डालते हैं। पत्तो की पुल्टिस (poultice) गद्दो (glandular swellings) पर हितकारी है। छाल के प्रलप से फोडा पक जाता है।

सागवान

(Tectona grandis)

भाषायी नामभेद	ब०—शॅगुनगाछ, म०—साग, गु०—साग, क०—नगू, ते०—टेकुचेटटु, ता०—देकु, फा०—फिनगोन, अ०—फिलजोश और उजनुलपिल, इ०—Teak tree
सस्कृत नाम	भूमिसह, द्वारदारु, वरदारु, खरच्छद आदि।

विवरण इस वृक्ष को 'सागौन' भी कहते हैं। सागौन के पड नेपाल तथा हिमालय की तराई मे बहुत बडे बडे पाए जाते हैं। पत्ते बडे बडे और खुरदरे होते है। फल सफेद बहुत छोटे पाए जाते हैं। वक्ष की लकडी भीतर से पीले रग की होती है। टीक प्लाई पर जो आकृति होती है वही आकृतिया इसकी लकडी क चीरने पर पायी जाती हैं। इसम वसन्त ऋतु मे फूल आकर ज्येष्ठ मास (ग्रीष्म ऋतु) मे फल आता है।

गुण सागौन प्रशीतक, और रक्त पित्त को शुद्ध करने वाला है। इसकी लकडी

एक ग्राम यदि 30 40 ग्राम देसी घी मे मिलाकर सेवन किया जाए तो शक्ति प्रदान करता है। सिरस पुष्प के चूर्ण का सेवन स्वप्नदोष को रोकता और धातु को गाढा करता है। इसके बीजो का चूर्ण एक भाग, मिश्री दो भाग लेकर एक गिलास गर्म दूध के साथ प्रात काल पीने से शुक्र (sperm) गाढा होता है। सिरस के बीजो का लेप गले की गाठो को भी दबाता है।

सिहोरा

(Strepelusasper)

भाषायी नामभेद	ब०—शे ओरा तथा शाडा, म०—सहोड, गु०—सहोडा ते०—भार [illegible]
संस्कृत नाम	शारवोट, पीतफल [illegible] न्द आदि।

विवरण सिहोरा के पेड झाडदार, बहुत कर्कश तथा काले रग के पत्तो से युक्त होते हैं। पत्तो की आकृति गूलर के पत्ता के समान होती है। इसका काड (trunk) मोटा, छाल (rind) काले रग की खुरदरी होती है। इसकी लकडी बहुत ही लचीली (चीमड) होती है। इसके पत्तो को छूने से खुजली पैदा होती है। पत्तो को तोडने पर सफेद रग का दूध निकलता है।

गुण सिहोरा रक्त पित्त (haemoptysis), बवासीर (piles), वातकफ तथा अतिसार (diarrhoea) नाशक है। यह रसायन (elixir) है। इसे प्लीहा (spleen) तथा यकृत (liver) रोगो मे देते है। हाथ पर फटने पर इसका रस लगाते है। इसके पत्ते हाथीदात की वस्तुओ (ivory) पर पा [illegible] के काम आते हैं। दातो एव मसूडों की रक्षा के लिए इसकी छाल [illegible] प्रय किया जाता है।

बहुत मजबूत होती है और दरवाजे खिड़कियाँ, मेज कुर्सी आदि फर्नीचर एवं ...नाई निर्माण मे बहुत उपयोगी है।

सिरस

(Mimoso Sirisa Roxyb)

भाषायी नामभेद — बं०—शिरीष गाछ, म०—शिरसी, गु०—सरसडियो, क०—शिरसु त०—दिरसन, फा०—दरख्त जकरिया, अ०—मुलतानुल असजार।

संस्कृत नाम — शिरीष, भण्डिल, भण्डी, भण्डीर, कपीतन, शुकपुष्प, शुकतरु मृदुपुष्प, शुकाप्रिय आदि।

विवरण यह जंगलों में ... वृक्ष है। काड स्थूल (stout) छाल सफेद, काली (मटमैली), ... (... idic) और कपला होता है। पत्ते आंवले के पत्तो की तरह होते हैं। एक टहनी में चार से आठ जोड़े पत्ता में होते हैं। सर्दी के मौसम मे पेड के पत्ते गिर जाते हैं। फूल कोमल और तीव्र गंधवाला एवं रंग पीताभ शुभ्र (yellowish white) होता है। इसका पुष्पित काल ग्रीष्म ऋतु है।

गुण मधुर (dulacis), प्रकृति में न अधिक गर्म और न ही ठंडा अर्थात सम (moderate) होता है। सिरस कड़वा, कपला, हलका और दोष, सूजन (inflammation), विसर्प (eruption), खांसी, व्रण तथा विषविनाशक है। इसके बीज बलप्रद अथवा संकोचक हैं। फोड़े, खुजली अथवा सूजन वाले अंग पर इसके पत्तों का लेप किया जाता है। त्वक चूर्ण (rind powder) आंखों के रोगों में प्रयुक्त होता है। छाल का क्वाथ पक्व मुख मे गरारे और कुल्ले के काम आता है और बल्य (tonic) अथवा रसायन (elixir) रूप मे सेवन किया जाता है। इसके पत्तों का रस रतौंधी (hmerolopia) के लिए उत्तम है। सिरस की छाल का चूर्ण

एक ग्राम यदि 30 40 ग्राम देसी घी मे मिलाकर सेवन किया जाए तो शक्ति प्रदान करता है। सिरस पुष्प के चूण का सेवन स्वप्नदोष को रोकता और धातु को गाढा करता है। इसके बीजो का चूण एक भाग, मिश्री दो भाग लेकर एक गिलास गम दूध के साथ प्रात काल पीने से शुक्र (sperm) गाढा होता है। सिरस के बीजो का लेप गल की गाठो को भी दबाता है।

सिहोरा

(Strepelusasper)

भाषायी नामभेद — ब०—शे ओग्रा तथा शाडा, म०—सहोड, गु०—सहोडा ते०—भार [illegible] ।

सस्कृत नाम — शारवोट, पीतफल [illegible] कद आदि।

विवरण सिहोरा के पेड झाडदार, बहुत ककश तथा काले रग के पत्तो से युक्त होते है। पत्ता की आकृति गूलर के पत्तो के समान होती है। इसका काड (trunk) मोटा, छाल (rind) काले रग की खुरदरी होती है। इसकी लकडी बहुत ही लचीली (चीमड) होती है। इसके पत्तो को छूने से खुजली पदा होती है। पत्तो को तोडने पर सफेद रग का दूध निकलता है।

गुण सिहोरा रक्त पित्त (haemoptysis), बवासीर (piles), वातकफ तथा अतिसार (diarrhoea) नाशक है। यह रसायन (elixir) है। इसे प्लीहा (spleen) तथा यकृत (liver) रोगो मे दते है। हाथ पर फटने पर इसका रस लगाते है। इसके पत्ते हाथीदात की वस्तुओ (ivory) पर पालिश करने के काम आते हैं। दाता एव मसूडों की रक्षा के लिए इसकी छाल (rind) का प्रयोग किया जाता है।

सीसम

(Dalpergia Sissoo)

भाषायी नामभेद — ब०—शिशुगाछ और सादाशिशुगाछ, म०—कालाशिशवा, गु०—शिशम, क०—करीपई विडु, ते०—जिटटेरे गुचेटट, अ०—सीसम और सासम, इ०—Black wood

संस्कृत नाम — शिंशिपा, पिच्छिला, श्यामा, कृष्णसारा और भूरे रंग वाले सीसम को भस्मगर्भा कहते हैं।

विवरण सीसम (शीशम) के बहुत बड़े-बड़े पेड़ होते हैं। इसका काड साधारण नहीं होता, प्राय स्थूल (stout) तथा दीर्घ होता है। शाखाए बहुत होती हैं। छाल (bark) फटी हुई होती है। पत्ते लम्बी-लम्बी टहनियों में जोड़े-जोड़े लगे रहते हैं। पत्ते कोमल रहने पर हरित-पीत (greenish yellow) और कुछ कठोर होने पर चिकने तथा चमकीले हो जाते हैं। इस अवस्था में पत्ते कुछ पीले-सफेद और छोटे होते हैं। फली पतली एव लम्बी तथा इनमें बीज की संख्या तीन होती है। पतली टहनी को तोड़ने पर लकड़ी सफेद होती है किन्तु जरा-सी हवा लगते ही पीली हो जाती है। इसे दांतों से चबाया जाए तो प्रथम श्वेत, तत्पश्चात पीली और अंत में लाल हो जाती है।

सीसम दो प्रकार की पायी जाती है—1 काले रंग की और 2 भूरे रंग की।

गुण सीसम चरपरी, कड़वी, कपली, उष्ण प्रकृति वाली, गर्भ गिराने वाली (abortifacient) और मेद (fat), कुष्ठ, श्वेत कुष्ठ (leucoderma), वमन, कृमि, वस्तिरोग (मूत्राशय रोग), व्रण, जलन, रक्तविकार, सूजन (inflammation) एव कफ को नष्ट करने वाली है। इसके पत्तों को गर्म करके फोड़े पर बांधने से फोड़ा (abscess) दब जाता है या फूट जाता है। इसकी पत्तियों का क्वाथ प्रशीतक, कषाय (astringent) प्रमेह, जलन तथा प्रदर (leucorrhoea) को दूर करता है। इसके एक से दो तोले रस को बराबर भाग शहद मिलाकर देने से यह बल्य (tonic) होता है तथा पांडुरोग (pallor) की अचूक दवा है।

सेमल

(Bombax Malabaricum)

भाषायी नामभेद — ब—शिमुल, म०—सावरी और शेवरी, गु०—शीमलो, के०—पवल वदमर, ते०—रगचेट्टु, ता०—पुलॉ, इं०—Silk Cottan tree

संस्कृत नाम — शाल्मली, मोचा, पिच्छिला, पूरणी, रक्तपुष्पा, स्थिरायु, कण्टकाढ्या, और तूलिनी आदि।

विवरण इस वृक्ष को कुछ लोग 'सेमर' भी उच्चारित करते हैं। इसके पेड़ बहुत बड़े, ऊचे तथा मोटे होते हैं। काण्ड (trunk) कांटों (thorns) से भरा स्थूल होता है। पत्ते चिकन, लम्बे और एक टहनी पर तीन से पांच तक पाए जाते हैं। ग्रीष्म मे पत्ते झड़कर फूल आ जाते हैं। इसके फूल लाल रंग के बड़े और चिकने होते हैं। ग्रीष्म ऋतु के अन्त मे इस पर फलियां लगती है जो मोटी-मोटी तथा 9-10 इंच लम्बी होती हैं। ये फलियां कच्ची रहने पर हरी और पकने पर फटकर पांच भागो मे विभक्त हो जाती हैं। इनमे विद्यमान रुई हवा लगते ही उड़ जाती है। सेमल के बीज इस रुई मे गोल गोल काली मिर्च की तरह छोटे छोटे चिकने पाए जाते हैं। फूलो मे अन्तर होने के कारण यह दो प्रकार का होता है—1 रक्त एवं 2 श्वेत। सफेद फूल वाले सेमल वृक्ष मे कांटे कम होते हैं और शेष लक्षण समान होते हैं।

गुण सेमल प्रशीतक (refrigerant), मधुर, पकाने मे मधुर, रसायन (elixir), कफकारक, और पित्त, वात, रुधिरविकार तथा रक्तपित्त को नष्ट करने वाला है। सेमल की कच्ची जड़ सकोचक अथवा शीतगुणो वाला, रसायन, स्निग्ध (demulcent) है। यह अतिसार, रक्तातिसार (dysentry), तथा रज-स्राव मे भी दिया जाता है। जब पेशाब का रंग गाढा एवं गन्दा (turbid) होता है तब सेमल की मूसला जड़ (tap root) का प्रयोग किया जाता है। छोटे सेमल के मूसले को तपेदिक (tuberculosis) मे टुकड़े टुकड़े करके मोदक (लड्डुआ) के रूप में शक्ति प्राप्त करने के लिए दिया जाता है। इसके गोद (gum) को मोचरस कहते हैं। मोचरस प्रशीतक, ग्राही, स्निग्ध, वीर्यवर्धक, कसैला और प्रवाहिका (dysentry), अतिसार (diarrhoea), कफपित्त, रुधिरविकार तथा जलन को नष्ट करने वाला है। अत्यधिक रजस्राव मे प्रयोग किया जाता है। दूधदान समय (during lactation) मे ऋतुस्राव को बन्द करने के लिए स्त्रियां मोचरस का सेवन किया करती है। मोचरस धातुसाम्यकर, कफनिस्सारक (expectorant) और वाजीकरण मोदको की प्रधान वस्तु है।

हरड

(Terminalia Chebula)

भाषायी नामभेद	बं—हरतकी, को०—कोशाल, म० —हत्तकी, गु०—हरड, क०—अणिलय, तें०—करक्काय, ता० कडवे, द्रा०—कलरा, फा०—हलैल, क्लाजीरे एव जवीअस्वर, अ०—एहलीरज।
संस्कृत नाम	हरीतकी (हरी), पथ्या (हितकारणी), कायस्था (शरीर धारक) अभया (भयरहित), पूतना (पवित्रकारिणी), अमता (अमत तुल्य), हैमवती (हिमालय पर होने वाली), अव्यथा (व्यथानाशक), चेतकी (चेतन करने वाली), श्रेयसी (श्रेष्ठ), शिवा (कल्याणकारिणी), वयस्था (आयुस्थापक), विजया रोगो का जीतने वाली), जीवन्ती (जीवनदायिनी), रोहिणी (रोपणी) इत्यादि।

विवरण हरड के पेड अधिकतर जगलों मे तथा पाच हजार फुट की ऊचाई तक के पर्वतीय प्रदेशो मे पाये जाते है। इसके पत्ते महुए के पत्तो से मिलते-जुलते किन्तु पतले और लम्बे होते है। पत्रोदर चिकना, हरे रग का और पीठे से पत्ता हल्का पीलापन लिए हुए कोमल होता है। किनारे तरगायित (waved) होते हैं और बीच बीच मे शिराए (नसें) उभरी हुई होती हैं। पत्ते वाली टहनी लगभग एक इच लम्बी, प्रारम्भ मे मोटी और अन्त भाग कुछ पतला होता है। पत्ते लम्बाई म 6 से 10 इच तक चौडाई मे डेढ से ढाई इच तक एव नोकदार होते है। तना मजबूत होता है। पेडो की ऊचाई सौ से डेढ सौ फुट तक होती है। वसन्त ऋतु के आते ही पतझड होकर नए हरे कोमल पत्ते निकल आते है। शिशिर और हेमन्त ऋतु मे मजरी (Catkin) आने लगती है। मजरिया से भीनी भीनी गन्ध निकला करती है। कुछ दिनो के बाद इसमे नई कलिया निकल आती हैं। कार्तिक मास म फल स्पष्ट दीखने लगते हैं जो धीरे धीरे पुष्ट हो जाते है। ये फल वसाख मास मे उपयोग मे लाने योग्य हो जाते हैं।

एक और दूसरी जाति के वृक्ष होते हैं जो वसन्त आने तक पुष्पित होते हैं तथा ग्रीष्म आरम्भ होने तक पुष्ट हो जाते हैं। इस समय फलो से लदे हुए वक्ष की शोभा अपूर्व होती है। कच्चे फल हरे और स्वाद मे अधिक कषैने, कुछ कडवे होते हैं। पक जाने पर इनका रग रक्ताभ पीला (reddish yellow) हो जाता

है। ये पुराने जंगलों, पर्वतीय अथवा समतल मैदानी स्थानों में सर्वत्र पाए जाते हैं। विशेषतया उस भूमि में अधिक होते हैं जिसमें चूने (रेह) का भाग अधिक हो अथवा कुछ रेतीला (sandy) हो। उत्तर प्रदेश के जंगलों (नेपाल की तराई से आरम्भ होकर पीलीभीत होती हुई गोरखपुर तक फैली पट्टी) में अधिक पाए जाते हैं। इस क्षेत्र में पचास ग्राम से वजन तक की हरड़ मिलती है। विन्ध्याचल की पहाड़ियों में सर्वत्र होने वाले हरड़ के पेड़ और फल छोटे छोटे पाए जाते हैं।

हरड़ की सात जातियां होती हैं—1 विजया, 2 रोहिणी, 3 पूतना, 4 अमृता, 5 अभया, 6 जीवन्ती और 7 चेतकी। जो हरड़ तोम्बी (लौकी) की तरह गोल हो उसे विजया, जो साधारण गोलाई लिए हो उसे रोहिणी, जो बड़ी गुठली वाली किन्तु छोटी और कम गूदे वाली हो उसे पूतना, जो अधिक गूदे वाली हो उसे अमृता, जो पांच रेखाओं से युक्त हो उसे अभया जो सोने की तरह पीले रंग की हो उसे जीवन्ती तथा जो तीन रेखाओं से युक्त हो उसे चेतकी हरड़ कहते हैं। प्राचीन समय में सातों तरह की हरड़ें (हरीतकी) भिन्न भिन्न प्रदेशों में पायी जाती थी। जैसे विन्ध्याचल पर्वत पर विजया, हिमालय में चेतकी और अमृता, सिन्ध में पूतना, रोहिणी तथा विजया, झांसी के पास बिठूर में, चंपारन में अभया और सौराष्ट्र (सूरत) में जीवन्ती नामक हरड़ पैदा होती थी। चेतकी दो प्रकार की होती है—कृष्ण (काली) तथा श्वेत (सफेद)। सफेद हरड़ प्राय: 4 5 इंच लम्बी और काली लगभग पौन इंच लम्बी होती है।

गुण: हरड़ (हरीतकी) में लवण रस (chyle) के अतिरिक्त पांचों रस (मधुर, तिक्त, कड़वा, कषाय और अम्ल) पाये जाते हैं किन्तु विशेषकर कषैली होती है। यह रूखी, उष्ण, भूख बढ़ाने वाली, बुद्धि को हितकारी, मधुर पकने वाली, आयु को बढ़ाने वाला, नेत्रों को हितकारी, हल्की, शरीर को पुष्ट करने वाली और वायु (gas) को शान्त करने वाली है। यह श्वास, खांसी, प्रमेह, बवासीर, कुष्ठ, सूजन, पेट के रोगों, कृमिरोग, स्वरभंग (विसर्प रोग), अग्निमांद्य, कब्ज (constipation), विषम ज्वर, गुल्म (tumour) अफारा, व्रण, वमन (vomiting), हिचकी (hiccup), और हृदय के रोग, कामला (jaundice), शूल, प्लीहा एवं यकृत के रोग पथरी (stone), मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों को दूर करती है।

हरड़ मधुर तिक्त और कषैली होने से पित्त को, कटुतिक्त तथा कषैली होने से कफ को और अम्ल होने से वात को हरने वाली है। हरड़ की मज्जा (pulp) में मधुरस, इसकी शिराओं (veins) में खट्टारस, डंठल (वृन्त) में कड़वापन, छाल में कटुरस और गुठली में कषैला रस होता है। दबाकर खाई हुई हरड़ अग्नि को बढ़ाती है, पीसकर खाई हुई साफ दस्त लाती है। उबालकर खाई हुई दस्त बन्द करती है और भूनकर खाई हुई हरड़ तीनों दोषों (कफ पित्त वात) को नष्ट करती है। भोजन के साथ खाई हुई हरड़ बुद्धि, बल तथा इन्द्रियों को प्रसन्न करती है,

वात पित्त तथा कफ का नष्ट करती है, मल मूत्रादि विकारों को निकालने (excrete) वाली है। भोजन के अन्त में खाई हुई हरड मिथ्या अन्नपान से होने वाले वात पित्त एवं कफ के सब विकारों को शीघ्र दूर करती है।

हरड नमक के साथ कफ को, शक्कर (sugar) के साथ पित्त को, घृत के साथ वातविकारों का और गुड के साथ सब रोगों का दूर करती है। जो मनुष्य आयु बढाने के लिए रसायन (elixir) रूप में हरड का सेवन करना चाहते हैं उन्हें वर्षा ऋतु में नमक से, सर्दी में शक्कर से, हेमन्त में सोंठ से, शिशिर में पीपल के साथ, बसन्त ऋतु में मधु के साथ और ग्रीष्म ऋतु में गुड के साथ सेवन करना चाहिए। विश्लेषण करने पर देखा गया है कि हरड में 45% टनिक अम्ल होता है। इसके अतिरिक्त गलिक एसिड, कुछ भूरे रंग का पदार्थ और म्युसिलेज इत्यादि अधिक रहते हैं। इसमें हरितकयम्ल (Chebulinic Acid) प्रधान वस्तु है जो इसके पानी में क्वाथ बनते समय टनिक व गैलिक अम्ल में बदल जाते हैं।

एक समय था जब हरड (हरीतकी) काफी बडी और वजनी हुआ करती थी किन्तु जसे जसे आयुर्वेद की अवनति होती गई इस ओर से वैद्यों तथा उत्पादकों का ध्यान हटता गया वसे-वैसे आज जगलों में उत्पन्न होने वाली हरड उपलब्ध होने के कारण उन सब प्राचीन हरडों का अभाव सा हो गया है। आजकल जो हरड अधिकतर पाई जाती है वह छोटी-काली 'जगी हरड' के नाम से प्रसिद्ध है। जो हरड नई, चिकनी, घनी, गोल और भारी हो और जल में डालने से डूब जाए वह हरड उत्तम और गुणकारक है। उपर्युक्त लक्षणों से भरपूर तथा वजन में 25 ग्राम के लगभग पायी जाने वाली हरड ही उत्तम कहलाता है।

हिंगोट

(Balanites Roxb)

भाषायी नामभेद — बं०—इगाट, म०—हिंगणबेट, गु०—इगोरियो, ते०—गरा अं० —हिलेलजे इं०—Delil

संस्कृत नाम — इगुद, अगार वृक्ष तिक्तक, तापसद्रुम आदि।

विवरण — हिंगोट को 'गोंदी' भी कहते हैं। हिंगोट के वृक्ष हिमालय तथा उसके

पौधे की जंगल भूमि में जहां कंकड़ अधिक होते हैं, कृष्णा या गोदावरी के किनारे एवं दक्षिणी पठार पर 15-16 फुट ऊंचे पाये जाते हैं। इसके पत्ते कटहल की तरह किन्तु कम चौड़े और नोकदार होते हैं। पुष्प छोटे और पीताभ (yellowish) रंग के होते हैं। बसन्त ऋतु में फूल लगता है। इसके बीज बड़े-बड़े तथा गुठली बहुत मजबूत होती है।

गुण : हिंगोट उष्ण, कड़वा, पकाने में चरपरा, और कुष्ठ, भूतादि ग्रह, व्रण, विष, कृमि, श्वेत कुष्ठ (सफेद कोढ़) तथा शूल (colic) को नष्ट करता है। इसके फल का गूदा (pulp) तथा तेल बहुत अधिक औषधियों में प्रयोग किया जाता है।

परिशिष्ट

कल्प वृक्ष

(Edensonia Digiteta)

भाषायी नामभेद बं०—कल्पतरु, उ०—कल्पवक्ष, ते०—कल्पवक्ष, म०—कल्पवृक्ष गु०—कल्पवृक्ष, ता०—कल्पवृक्ष।

संस्कृत नाम कल्पतरु, कल्पवृक्ष, कल्पद्रुम।

विवरण धार्मिक मान्यताओ के अनुसार समुद्र मथन से प्राप्त चौदह रत्नो मे से एक रत्न कल्पवक्ष भी है। मान्यता यह है कि कल्पवृक्ष सभी इच्छाओ को साकार करता है। भारत मे इसका बडा धार्मिक महत्व है तथा इसकी पूजा की जाती है। इतिहास के पन्नो मे इस अद्भुत वक्ष का उल्लेख कई स्थानो पर मिलता है। कभी इन्द्र को वश मे करने के लिए इन्द्राणी ने कल्पवक्ष का दान किया था। वास्तव म कल्पवक्ष एक दुलभ वृक्ष है किन्तु राजस्थान के दक्षिण म स्थित बास वाडा नगर मे आनन्द सागर के पास एक साथ दो दो कल्पवक्ष खडे हैं जिन्हे महा राजा रानी के नाम से जाना जाता है। एक वृक्ष बडौदा के पास तथा सभवतया एक वक्ष उदयपुर के उद्यान मे भी है। अफ्रीका मे यह बहुतायत से उपलब्ध है, कुछ लोग इसे कल्पना-वक्ष मानते हैं।

किंवदती है कि यात्रा के दौरान एक समय लकाधिपति रावण ने अपना पर इस प्रदेश मे रखा था। इस पैर के चिह्न पर ये वृक्ष उत्पन्न हुए। जहा पजे का निशान बना वहा राजा तथा जहा एडी का निशान बना वहा रानी स्थित है और इसी कारणवश राजा का तना पजे की आकृति का है जबकि रानी का तना एडी के समान गोल है। राजा के तने (Trunk) का व्यास 7 65 मीटर और रानी के तने की मोटाई 4 25 मीटर है। कल्पवृक्ष अपने मोटे तनो के कारण सघन जगलो मे भी पहचाने जा सकते हैं।

कल्पवक्ष का सबसे बडा आकषण इसका तना है। उपयुक्त वातावरण मिलने पर तना अपना घेरा इतना बढा लेता है कि अफ्रीका म इस तने को अन्दर से खोखला कर रहने के उपयोग मे लाया जाता है। कभी कभी इन तनो मे पर्याप्त मात्रा म पानी एकत्र कर लिया जाता है जो बाद म पीने के काम आता है।

यह वक्ष मूलत दक्षिण अफ्रीका से भारत आया है। वहा यह 'बाओबाब' या 'अफ्रीकन कलाबाश ट्री' कहलाता है। आकार और सरचना मे इसकी पतिया अगुलियों जसी होती हैं। इसके पुष्प बहुत सुन्दर होते हैं तथा नवम्बर से दिसबर के मध्य इसके फल पकते हैं। फलो का आकार 'लौकी' जैसा होता है। स्वाद मे

यह खट्टा होता है, शायद इसी कारण इसे 'इमली' जैसे नाम भी मिले हैं। बाबा गोरखनाथ ने इस वृक्ष के नीचे तपस्या की थी इसीलिए राजस्थान में कहीं-कहीं पर इसे 'गोरख इमली' भी कहा जाता है। इसकी आयु लगभग पांच हजार वर्ष मानी गई है किन्तु अनेक वनस्पतिशास्त्रियों का इस सम्बन्ध में विचार भिन्न है। बांसवाड़ा क्षेत्र के पेड़-पौधों का अध्ययन करने वाले डॉ० शाहीद मीर खां के अनुसार कल्पवृक्ष 'बोम्बेकेसी' कुल का सदस्य है।

गुण इसकी सूखी पत्तियों के सेवन से गुर्दे की बीमारी में आराम मिलता है। इसकी छाल (bark) में भूख बढ़ाने की प्रवृत्ति है तथा यह ठंडक लाती है। छाल का काढ़ा बनाकर पीने से मलेरिया की रोकथाम होती है। इसकी पत्तियों का रस आंखों की जलन कम करता है। इसके बीजों को पीसकर मसूढ़ों में लगाने से दर्द दूर होता है। बीजों का काढ़ा पेचिश (dysentry) की रोकथाम करता है। कल्पवृक्ष की छाल से रस्सी भी बनाई जाती है तथा मोटा कागज भी बनाया जाता है।

निवेदन भारत में यह वृक्ष विलुप्तीकरण की स्थिति में है। अतः जनसाधारण तथा राजकीय वन विभाग से अनुरोध है कि इस दुर्लभ वृक्ष को सुरक्षित रखने एवं इसके अधिकाधिक रोपण की व्यवस्था करें। यह वृक्ष हमारी पौराणिक काल की धरोहर तथा सम्पदा है।

शाब्दिक परिभाषाएं

उष्ण	जो पदार्थ सेवनोपरान्त अथवा प्रयोग करने के पश्चात शरीर में गर्मी उत्पन्न करे 'उष्ण' कहलाता है।
ग्राही	जो पदार्थ शरीर में अग्नि को प्रदीप्ति करता है, कच्चे को पकाता है, गर्म होने के कारण गीले (आर्द्र) को सुखाता है वह 'ग्राही' कहलाता है। उदाहरणार्थ—सोंठ, जीरा, गजपीपल।
तीक्ष्ण	जो पदार्थ दाहजनक, व्रण को पकाने वाला एवं लाला रस आदि का स्राव कराने वाला हो उसे 'तीक्ष्ण' कहते हैं।
प्रशीतक	यह पदार्थ या वह गुण है जो सेवन किए जाने पर शरीर की उष्णता कम करके उसे ठंडा कर दे तथा बढ़ी हुई गर्मी को शांत कर दे।
पिच्छिल	जो पदार्थ प्राणधारक, शक्ति देने वाला, हड्डियां एवं क्षत को जोड़ने वाला और श्लेष्माजनक होता है उसे 'पिच्छिल' कहते हैं।
मृदु	जो पदार्थ तीक्ष्ण के विपरीत अर्थात् दाहकर, व्रणपाचक एवं लाला-स्रावान्वित न हो उसे 'मृदु' कहते हैं।
लेखन	जो पदार्थ शरीर की धातुओं को अथवा मल को सुखाकर दुबलता पैदा करे अर्थात मोटे शरीर को पतला कर दे उसे 'लेखन' कहते हैं। उदाहरणार्थ—इन्द्रजौ, मधु आदि।
विदाही	जो द्रव्य भोजन करने के पश्चात खट्टी डकारें (belchings), प्यास एवं छाती में जलन पैदा करे और देरी से पचे उसे 'विदाही' कहते हैं।
विरेचक	जो पदार्थ अधपके अथवा कच्चे मल को पतला करके नीचे गिरा दे अर्थात दस्त करा दे उसे 'विरेचक' कहते हैं।
शमक	जो पदार्थ वात पित्त कफ को शुद्ध नहीं करता अर्थात् ऊपर या नीचे के मार्गों द्वारा नहीं निकलता विद्यमान वात पित्त-कफ को बढ़ाता नहीं, किन्तु बढ़े हुए दोषों को बराबर कर देता है उसे 'शामक' कहते हैं।
स्तम्भक	जो पदार्थ रूखा, शीतल, कषैला होने के कारण वायु को उल्टा करने वाला होता है अर्थात नीचे जाने वाले पदार्थ को नीचे जाने से रोकता है उसे 'स्तम्भक' कहते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली

(हिंदी-अंग्रेजी)

अ

अतिसार	Diarrhoea
अग्निमांद्य	Dyspepsia
अपची	Indigestion
अफारा	Flatulence
अम्लपित्त	Acidity
अवसादक	Sedative
अश्मरी	Strangury
अक्षोभक तेल	Bland oil
अर्श	Haemorrhoids

आ

आतशक (फिरंग रोग)	Syphilis
आधाशीशी	Hemicrania
आमवात	Rheumatism
आमस (ऐंठन)	Spasm
आवेगी ज्वर	Paroxysmal fever
आक्षेप	Convulsion
आमातिसार	Mucus diarrhoea

उ

उदरशूल	Colic
उदर वायु (अफारा)	Flatulence
उष्ण	Stimulant

क

कखौरी	Bubo
कफ	Phlegm
कफरोग	Catarrh

कफनिस्सारक	Expectorant
कर्णस्राव	Otorrhoea
क्वाथ	Decoction
कटिशूल	Lumbago
कटिप्रदेश	Lumbar region
कटि स्नान	Sitz bath
कषैला, कषाय	Astringent
काग	Uvula
काला ज्वर	Typhus
कालिक ज्वर रोधी	Antiperiodic
काण्ड	Trunk
किरीटी	Coronate
कोटर	Cavity, Antrum
कृमिहर	Anthalmintic
कृमि	Helminth
ग	
गर्भस्रावक	Abortifacient
गर्भाशय	Uterus
गरारे	Gargle
गण्डमाला (कंठमाला)	Scrofula
गलक्षत	Sore throat
गलगण्ड	Scrofulous
गिरी	Kernel
गुदा	Anus
गुदापूयत्ति	Pyelitis
गुल्म	Tumour
गुंजा	Abrus
गूदा (फल का)	Legume
गूदा	Pulp
गृध्रसी	Sciatica
ग्रहणी	Dyspepsia
ग्राही	Astringent
ग्रहणीनाशक	Antiduodenal

न

नसवार	sternutatory
नासूर	sinus
नीमतल	margosa

प

पाचक	digestive
पिचवर्ति	passaries
पित्तवर्धक	cholagogue
पित्तकर	bialiary
पित्त	bile
पित्तकफ नाशक	expectorant
पचिश	dysentry
पुंकेसर	stamen
पुंपुष्पी	staminate
प्रदर	leucorrhoea
प्रदाहक	cauter
प्ररोह	shoot
प्रलेप	paste
प्रशीतक	refrigerant
प्रसव	natal

फ

फलावरण	pericarp
फफोला	blab
फली	pod
फिरंगरोग (आतशक)	syphilis
फल का गूदा	legume

म

मजबूत	stout
मद	intoxication
मधर	dulacis
मधुमेह	diabetes
मल	egesta

मृदु	tender
मसूड़े	gums
मसूरिका	measles
मादक	intoxicating
मिर्गी	epilepsy
मितली	nausea
मूत्रल	diuretic
मूत्रजनन	diuresis
मूत्र रोग	cystitis
मूत्रकृच्छ (अश्मरी)	strangury
मूत्रवाहिनी	ureter
मोतिया	cataract
मेड़	ridge
य	
[illegible]	[illegible]
र	
रक्तमूत्रता	haematuria
रक्तष्ठीवन	haemoptysis
रक्तातिसार (पेचिश)	dysentery
रक्त स्राव	haemorrhage
रसायन	elixir, alterative
[illegible]	[illegible]
[illegible] (खांसी)	dry barking [illegible]
रेचक	laxative
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
ल	
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
व	
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]

emetic
ulcer
stipitate
renal colic
gout
carminative
cancer
abscess
eruption
intermittent fever
purgative
narcotic poison
anodyne

demulcent
asthma
leucoderma
headache
ague
refrigerant
aspermia
anticolic
dropsy

सार	extract
स्निग्ध	demulcent, moist
सीता (खाचा)	furrow
सुजाक	gonorrhoea
सुगंधित	aromatic
सोमरोग	bissinosis

ह

हिचकी	hiccup
हींग	Asafoetida

क्ष

क्षत	lesion
क्षय	consumption

ऋ

ऋतुस्राव	menstruation
ऋतुस्राव प्रवर्तक	emmenagogue

वमनकारी	emetic
व्रण	ulcer
वृन्त	stipitate
वृक्कशूल	renal colic
वात	gout
वातनाशक (वायुसारी)	carminative
विस्फोट	cancer
विद्रधि (फोड़ा)	abscess
विसर्प	eruption
विषमज्वर	intermittent fever
विरेचक	purgative
विषवत	narcotic poison
वेदनाहर	anodyne

श

शामक	demulcent
श्वास रोग	asthma
श्वेत कुष्ठ	leucoderma
शिरः शूल	headache
शीत ज्वर	ague
शीतल	refrigerant
शुक्राभाव	aspermia
शूलरोग नाशक	anticolic
शोथ	dropsy

स

स्थूल	stout
स्तंभक	astringent
स्फोटक	pediculi
स्वेदकारी	diaphoredic (Agriculture)
स्वेदक	sudorific (medical)
स्नायुदौर्बल्य	scurvy
संज्ञाहीनता (चित्तभ्रम)	delirium

सार	extract
स्निग्ध	demulcent, moist
सीता (खाचा)	furrow
सुजाक	gonorrhoea
सुगंधित	aromatic
सोमरोग	bissinosis

ह

हिचकी	hiccup
हींग	Assafoetida

क्ष

क्षत	lesion
क्षय	consumption

ऋ

ऋतुस्राव	menstruation
ऋतुस्राव प्रवर्तक	emmenagogue

अनुसूची

□□

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री विष्णुदत्त शर्मा का जन्म 8 अगस्त, सन् 1935 ई -को ग्राम मुबारकपुर, जिला गाजियाबाद (उ प्र) में हुआ। आपके पिता वैद्य हरवश लाल शर्मा हैं। ग्राम्य जीवन को अपनाते माता अशर्फी देवी की कोख से जन्मे श्री विष्णुदत शर्मा ने बी एस-सी तक अध्ययन करने के पश्चात मेरठ विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम ए. परीक्षा पास की है।

प्रकाशन निबंध—विभिन्न साहित्यिक एव वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं मे लगभग 225 लेख प्रकाशित। मोनोग्राम—राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला एक परिचय (1964), राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के पद्रह वर्ष (1965)। पुस्तकें अपराध अभिज्ञान में फोटोग्राफी (1973), पर्यावरणीय प्रदूषण (1981), विष और उपचार (1984), पुलिस अन्वेषण फोटोग्राफी (1985), प्रदूषण-परिप्रेक्ष्य में रामचरितमानस (शोधप्रबध) सम्पादित पत्रिकाए समीक्षा, अभिभाविका।

पुरस्कार पुलिस अन्वेषण फोटोग्राफी पुस्तक पर पुलिस अनुसधान एव विकास ब्यूरो (भारत सरकार) से प गोविन्द बल्लभ पत पुरस्कार प्राप्त (1984), विज्ञान परिषद् (इलाहाबाद विश्वविद्यालय) द्वारा हिन्दी विज्ञान-लेखन हेतु सम्मानित (1985-86)।

रुचि फोटोग्राफी, हिन्दी-विज्ञान-लेखन। इनके अतिरिक्त पर्याप्त अनुवाद समीक्षा एवं सम्पादन कार्य किया है। अब भी निरन्तर लेखन-कार्य में सलग्न।